इन्दिरा गांधी
राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय
मानविकी विद्यापीठ

MHD-09
कहानी : स्वरूप और विकास

खंड

2
कहानी के सिद्धान्त और स्वरूप–2

इकाई 5
कहानी में वस्तु और शिल्प 5

इकाई 6
कहानी की भाषिक संरचना 16

इकाई 7
कहानी का वर्गीकरण, औचित्य और सीमाएँ 37

इकाई 8
कहानी की आलोचना की परम्परा 47

पाठ्यक्रम विशेषज्ञ समिति

प्रो. मैनेजर पाण्डेय
अवकाश प्राप्त प्रोफेसर एवं अध्यक्ष
भारतीय भाषा केन्द्र जे.एन.यू., नई दिल्ली

प्रो. रामदेव शुक्ल
अवकाश प्राप्त प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, हिन्दी विभाग
दी.द.उ.गोरखपुर विश्वविद्यालय, गोरखपुर

प्रो. लक्ष्मण सिंह बिष्ट बटरोही
अवकाश प्राप्त प्रोफेसर एवं अध्यक्ष
हिन्दी विभाग, कुमाऊँ विश्वविद्यालय, नैनीताल

प्रो. जवरीमल्ल पारख
प्रोफेसर, हिन्दी, मानविकी विद्यापीठ
इग्नू, नई दिल्ली

प्रो. गोपाल राय
अवकाश प्राप्त प्रोफेसर एवं अध्यक्ष
हिन्दी विभाग, पटना विश्वविद्यालय, पटना

श्री ज्ञानरंजन
प्रख्यात कथाकार एवं संपादक
जबलपुर, मध्य प्रदेश

डॉ. विजय बहादुर सिंह
प्रख्यात आलोचक
भोपाल, मध्य प्रदेश

डॉ. जितेन्द्र कुमार श्रीवास्तव, हिन्दी संकाय
मानविकी विद्यापीठ, इग्नू, नई दिल्ली

पाठ्यक्रम संयोजक

डॉ. जितेन्द्र कुमार श्रीवास्तव, हिन्दी संकाय
मानविकी विद्यापीठ, इग्नू, नई दिल्ली

खंड संयोजन, संशोधन एवं संपादन

डॉ. जितेन्द्र कुमार श्रीवास्तव, हिन्दी संकाय
मानविकी विद्यापीठ, इग्नू, नई दिल्ली

पाठ्यक्रम निर्माण समिति

पाठ लेखक	इकाई सं.
डॉ. आनन्द प्रकाश, अवकाश प्राप्त रीडर (अंग्रेजी) हंसराज कालेज, दिल्ली	5
डॉ. अर्चना वर्मा, अवकाश प्राप्त एसोसिएट प्रोफेसर (हिन्दी) मिरांडा हाउस, दिल्ली	6
डॉ. रघुवंशमणि एसोसिएट प्रोफेसर (अंग्रेजी) किसान पी.जी. कालेज, बस्ती (उ0 प्र0)	7
डॉ. प्रियम अंकित एसोसिएट प्रोफेसर (अंग्रेजी) आगरा कालेज, आगरा (उ0 प्र0)	8

विशेष सहयोग : सुश्री नमिता सत्येन

सहयोग : श्री अरुण कुमार पाण्डेय, सुश्री निवेदिता, श्री शंभुनाथ मिश्र, सुश्री लकी चौधरी

सचिवालयिक सहयोग : सुश्री हेमलता

सामग्री निर्माण

श्री सी. एन. पाण्डेय
अनुभाग अधिकारी (प्रकाशन)

अप्रैल, 2015

© *इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय,* 2015

ISBN:978-81-266-6859-5

सर्वाधिकार सुरक्षित। इस कार्य का कोई भी अंश इन्दिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय की लिखित अनुमति के बिना मिमियोग्राफ अथवा किसी अन्य साधन से पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।

इन्दिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय के पाठ्यक्रमों के विषय में और अधिक जानकारी विश्वविद्यालय के कार्यालय, मैदान गढ़ी, नई दिल्ली–110068 से प्राप्त की जा सकती है।

इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय की ओर से प्रो. सुनैना कुमार, निदेशक, मानविकी विद्यापीठ द्वारा मुद्रित एवं प्रकाशित।

Paper Used : "Agro based Environment Friendly"

लेजर टाइप सेटिंग : एच. डी. कंम्यूटर क्रॉफ्ट, डब्लु जैड 36ए, लाजवंती गार्डन, नई दिल्ली 110046

मुद्रक : राज प्रिंटर्स, ए–9, सैक्टर बी–2, ट्रोनिका सिटी, लोनी, गाजियाबाद (उ. प्र.)

खण्ड-2 परिचय

यह कहानी संबंधी माड्यूलर के पहले पाठ्यक्रम 'कहानी : स्वरूप और विकास' का दूसरा खण्ड है। इस खण्ड का शीर्षक है– कहानी के सिद्धान्त और स्वरूप–2। इस खण्ड में कुल चार इकाइयाँ हैं जो इस प्रकार हैं –

इकाई – 5 कहानी में वस्तु और शिल्प

इकाई – 6 कहानी की भाषिक संरचना

इकाई – 7 कहानी का वर्गीकरण, औचित्य और सीमाएं

इकाई – 8 कहानी की आलोचना की परंपरा

इस खण्ड को तैयार करने का उद्देश्य विद्यार्थियों को कहानी संबंधी मूल अवधारणाओं से परिचित कराना है। इस खण्ड की पहली इकाई में आप वस्तु और शिल्प के सैद्धांतिक पक्षों का अध्ययन करेंगे। वस्तु और शिल्प का विवाद बहुत पुराना है। इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप कहानी में वस्तु और शिल्प–दोनों का ठीक–ठीक महत्व जान सकेंगे।

कहानी में भाषा का विशेष महत्व होता है। इस खंड की दूसरी इकाई में आप कहानी की भाषिक संरचना का विधिवत अध्ययन करेंगे। कहानी के वर्गीकरण को लेकर भी तरह–तरह के सवाल उठाए जाते हैं। इस खंड की तीसरी इकाई में कहानी के वर्गीकरण के औचित्य पर विचार करते हुए उसकी सीमाओं का भी रेखांकन किया गया है।

इस खंड की चौथी इकाई में कहानी की आलोचना परम्परा पर सामग्री दी गई है। इस इकाई का उद्देश्य कहानी संबंधी आलोचना के वैश्विक परिदृश्य से परिचित कराना है। हमें उम्मीद है, इस खण्ड के अध्ययन के पश्चात आप कहानी में वस्तु और शिल्प, कहानी की भाषिक संरचना, कहानी के वर्गीकरण के औचित्य के साथ ही कहानी संबंधी आलोचना की परंपरा से परिचित हो सकेंगे/सकेंगी।

शुभकामनाओं सहित।

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

इकाई 5 कहानी में वस्तु और शिल्प

इकाई की रूपरेखा

5.0 उद्देश्य

5.1 प्रस्तावना

5.2 कहानी का स्वभाव या चरित्र

5.3 कहानी में रोचकता और सार्थकता

5.4 वस्तु और शिल्प का सैद्धांतिक पक्ष

5.5 प्रसिद्ध लेखक यशपाल की कहानी ''पराया सुख'' का उदाहरण

5.6 ''पराया सुख'' का घटना–क्रम और ताना–बाना

5.7 सारांश

5.0 उद्देश्य

यह इस पाठ्यक्रम के पहले खंड की इकाई संख्या पाँच है। इस इकाई को पढ़ने के बाद आपः

1. वस्तु और शिल्प की अवधारणा को समझ सकेंगे/सकेंगी;
2. कहानी में रोचकता और सार्थकता के महत्व को जान सकेंगे/सकेंगी;
3. कहानी की रचना प्रक्रिया को समझ सकेंगे/सकेंगी
4. 'पराया सुख' कहानी के उदाहरण के जरिए विश्लेषण की बारीकियों को जान सकेंगे/सकेंगी।

5.1 प्रस्तावना

यहाँ कहानी पर कुछ सामान्य चर्चा आवश्यक और उपयोगी है। कहानी विधा बहुत पुरानी है। यह लगभग उतनी पुरानी है जितनी मानवता की स्मृति। आप स्वयं याद करें कि पहली बार आपने कहानी कब सुनी। यह सवाल पूछा जाए तो हर व्यक्ति को अपना बचपन याद आएगा। बचपन के रूपक को व्यक्ति से हटा कर मानवता को लागू करें तो उसे यानि मानवता को भी अपना बचपन याद आएगा।

ईसा से कई सौ या कई हजार वर्ष पहले कही–लिखी कहानियाँ आज उपलब्ध एवं प्रचलित हैं। कहानी का प्राचीन रिश्ता भारत से भी रहा है। यह रिश्ता साधारण अथवा औपचारिक न था। बल्कि कहा जा सकता है कि जिसे हम आज कहानी कहते हैं उसका मूल रूप विशेष अर्थों में हमारे देश में उजागर हुआ। प्रसिद्ध कहानीकार जैनेंद्र कुमार की राय कहानी–संबंधी इस पक्ष से मिलती है। उनके अनुसार ''कहानी भारत की अपनी चीज़

है। वह उपनिषद् में है, पंचतंत्र और हितोपदेश में भी वही है। इन्ही के माध्यम से वह विदेशों में फैली, विकसित हुई और नाना रूप धरकर लोक–मन में बसी। आधुनिक कहानी हमने विदेशों से ही प्राप्त की। पर बाहर से उसकी सूचना ही आई। सूचना आते ही हिन्दी की परंपरा जग पड़ी और उसने फिर अपने को अभिव्यक्त किया। यही कारण है कि यद्यपि हिंदी की प्रारंभिक कहानियाँ तुतलाती और अटक–अटक कर चलती हैं, पर दो–चार वर्षों में ही उसने विश्वास से डग भरने शुरू किए।'' (जैनेंद्र कुमार, भूमिका)।

जैनेंद्र कुमार के कथन में दो चीजों पर विशेष विचार हो सकता है। पहली यह कि हमारे देश के प्राचीन इतिहास में कहानी की उपस्थिति तत्कालीन संदर्भ के बंधन में बंधी है। संदर्भ था शिक्षा और प्रचार का। उस समय यह भी आवश्यक था कि ''हित'' की व्याख्या की जाए। कहानी का रूप इसके लिए उपयोगी समझा गया। दूसरी यह कि बाकी साहित्य–रूपों की भाँति कहानी में सुधार और विकास की गुंजाइश होती है और आश्चर्य नहीं कि कुछ अंतराल के बाद उसका रूप इतना बदल जाए कि पुराने और नए रूप में कोई जुड़ाव न दिखलाई पड़े। तो यह हुआ कहानी विधा की चर्चा का प्रारंभ। चर्चा के क्रम में पहला विचार उसके स्वभाव या चरित्र है। अर्थात् हम जानना चाहेंगे कि कहानी का स्वभाव या चरित्र क्या है?

5.2 कहानी का स्वभाव या चरित्र

कहानी में घटना का होना जरूरी है। मनुष्य का वह अनुभव जो घटना की परिधि में आता है, घटना के माध्यम से व्यक्त होता है और इस भांति कि हम उसे प्रसन्नता अथवा दुख के अनुभव की भांति याद करते हैं, वह कहानी के निकट समझा जा सकता है। उदाहरण से यथासंभव बचते हुए हम सोचें कि प्रत्येक विशिष्ट अनुभव का एक बिंदु शुरूआती या प्रारंभिक बिंदु होता है। कल मैं सुबह घर से बाहर निकला तो जानते है क्या हुआ, यह कहिए तो सुनने वाला हर व्यक्ति, रुककर पूछेगा, बतलाइए क्या हुआ? साथ ही कल जो घटना घटी, वह वर्णन के रास्ते पर स्वभावतः आगे चलती है। सुनने वाला पूछता है–फिर? इसी तरह एक अन्य खास बिंदु पर वर्णन समाप्त भी हो जाता है। वर्णन के समाप्त होने के आसपास संतोष महसूस करते हुए हम अपना सिर भी हिलाने लगते हैं। हमें इस वर्णन को सुनना अच्छा लगता है। सामान्य तौर पर दो कालबिंदुओं के बीच सिमटा यह वर्णन कहानी समझा जा सकता है, जो घटना के इर्दगिर्द घूमता है।

यह भी सोचें कि कहानी का एक महत्वपूर्ण सिरा यद्यपि पाठक है, लेकिन दूसरा सिरा भी उतना ही मूल्यवान है। वह सिरा है स्वयं कहानी का लेखक। उक्त रोचकता और संतोष की अनुभूति अन्य स्तर पर लेखक को भी होती है। आज के वरिष्ठ कथाकार सतीश जमाली का निम्न वक्तव्य पढ़ेः

''मुझे याद है कि मेरी कहानी ''प्रथम पुरुष'' जब (मार्कंडेय द्वारा संपादित त्रैमासिक छोटी पत्रिका) ''कथा'' में छपी, तो चंद ही दिनों में पाठकों, लेखक–मित्रों और आलोचकों के बीच उसकी इतनी ज्यादा चर्चा हुई कि मैं दंग रह गया। इस एक कहानी ने जैसे रातों–रात मुझे कहानीकार के रूप में एक पहचान दे दी। यह छोटी पत्रिका में छपने और विशेष रूप से ''कथा'' जैसी छोटी पत्रिका में छपने का ही परिणाम था कि सबका ध्यान मेरी इस कहानी की तरफ गया। इसके बाद कई वर्षों तक तो यह भी होता रहा कि छोटी पत्रिका का कोई संपादक मुझे कहानी भेजने के लिए कहता तो साथ में यह जरूर जोड़ देता था– ''प्रथम पुरुष'' जैसी जोरदार कहानी भेजें। चंद्रभूषण तिवारी ने ''वाम'' में जब

मेरी कहानी ''बच्चे'' प्रकाशित की तो उन्होंने कहा कि 'बच्चे' भी आपकी बहुत अच्छी कहानी है, परंतु मैं ''वाम'' के लिए आप से ''प्रथम पुरुष'' जैसी महत्वपूर्ण कहानी चाहता था''। (सतीश जमाली, भूमिका, जंग जारी– (कहानी–संग्रह), नई दिल्लीः प्रकाशन संस्था, 2001

इस उद्धरण से स्पष्ट है कि कहानी की रोचकता का प्रभाव दो स्थानों पर दो तरह का होता है - पाठक के लिए कहानी प्रसन्नता और संतोष का विषय है तो लेखक के लिए वह अन्य स्तर पर सार्थकता और प्रेरणा का विषय है। यहाँ मेरा आशय केवल उस सकारात्मक अनुभूति की तरफ इशारा करना है जिसे अपने काम के मध्य अर्जित करता है। लेकिन साथ ही यहाँ एक विशेष परिवेश में कहानी की भूमिका और मूल्यवत्ता का भी जिक्र है, जिस पर प्रस्तुत इकाई में आगे विचार होगा।

5.3 कहानी में रोचकता और सार्थकता

उक्त घटना-वर्णन के बारे में रुककर सोचें तो पाएंगे कि कहानी की भाँति प्रस्तुत वर्णन में रोचकता का तत्व प्रधान होता है। यह रोचकता क्या है? रोचकता का संबंध पाठक/श्रोता द्वारा घटना क्रम में प्रवेश करने से है। कल्पना के सहारे पाठक/श्रोता महसूस करता है कि घटना असल में उसके साथ हो रही है --वह घटना का एक महत्वपूर्ण पात्र बन गया है। यह ऐंद्रिकता का, महसूस करने का मसला है। कहानी सफल भी इस आधार पर मानी जाती है कि वह पाठक/श्रोता को अपनी दुनिया में खींच लेती है। इस तरह कहानी एक तरह का नशा पैदा करती है -- कुछ क्षणों के लिए व्यक्ति भूल जाता है कि वह असल में कहाँ खड़ा है, अपनी वास्तविक दुनिया में या फिर कहानी की दुनिया में। संभवतः इस कारण कहानी की चर्चा करते समय "तिलिस्म", "ऐय्यारी", "जादू" जैसे शब्दों का प्रयोग होता है।

यहाँ एक सवाल उठता है। कल्पना का रिश्ता केवल कहानी से न होकर पूरे साहित्य से होता है, फिर कहानी की व्याख्या में कल्पना को विशेष महत्व क्यों दिया जाए? बल्कि यह कहा जा सकता है कि कहानी की निस्बत कविता में कल्पना या कल्पनाशीलता की भूमिका निर्णायक होती है। इस प्रश्न के जवाब में अपनी ओर से मैं कहूँगा कि निस्संदेह कविता में कल्पनाशीलता की मात्रा अधिक होती है, लेकिन जहाँ तक कहानी का संबंध है उसमें विवरणों का सामंजस्य कल्पनाशीलता को अतिरिक्त तीक्ष्णता प्रदान करता है। घटना तत्व में विवरणों का संकेत निहित है। घटना के विवरण सामान्य जीवन के बहुत निकट होते हैं। मसलन, हर व्यक्ति जानता है कि विवरण कहीं ऊपर से नहीं आते बल्कि उनका एक वास्तविक भौतिक आधार होता है। फिर जाहिर है कि इस आधार में एक साथ वे पक्ष भी आते हैं जिनकी प्रासंगिकता कभी कम होती है और कभी ज्यादा। कुछ लेखक नैतिकता को महत्व देते हैं, कुछ सफलता को, और कुछ अन्य प्रकृति को। साथ ही, महत्व देने के अनुपात में उनके विवरण बदलते हैं, और विशेष संदर्भ में विवरणों की मात्रा भी बदलती है।

इस तरह तर्क को आगे बढ़ाएँ तो इसमें, जैसा कि ऊपर कुछ पहले इशारा किया गया है, दो रास्ते खुलते हैं। एक है रोचकता का जिसे किंचित स्पष्ट किया गया है। दूसरा रास्ता अपेक्षाकृत सूक्ष्म है और उसका जुड़ाव पाठक द्वारा सिर हिलाने, अर्थात उसकी सहमति और समर्थन से है। इसकी भी संक्षिप्त व्याख्या आवश्यक है। जब पाठक में सहमति का भाव पैदा होता है, वह अपनी दुनिया में लौटता है और देखता है कि कहानी वाली बातें

न केवल वास्तविकता में मौजूद हैं, बल्कि वास्तविकता को आकर्षक भी बना रही हैं। इस तरह कहानी पाठक को वास्तविकता के पक्ष में खड़ा करने का माध्यम बनती है। वास्तविकता इसीलिए भी आकर्षक मालूम पड़ती है कि उसका अंदरूनी सच पाठक के लाभार्थ घटना-क्रम के बीच उभर आता है। अर्थात् कहानी सिर्फ रोचक न होकर वैचारिकता उत्पन्न करने का साधन बनती है। दुनिया का तर्क समझ में आने लगे और साथ ही वह पाठक को अपने वास्तविक परिवेश के विषय में सोचने को बाध्य करे तो कहानी की उक्त रोचकता दुगनी हो जाती है।

अब कहानी के इतिहास की बात करें जहाँ उसकी वस्तु और रूप का मिश्रित मर्म छिपा है। जिस कारण से साहित्य में रोचकता निहित है, उसी से साहित्य के खतरनाक होने का भी पता चलता है। वास्तविक संसार से निकल कर कल्पना के संसार में प्रवेश करना व्यक्ति के लिए सपने लेने का बायस बनता है। कल्पना की दुनिया मोहक होती है, और कहानी में रमने का सुख व्यक्ति को नैतिकता से दूर ले जाता है। नैतिकता का अर्थ ही बंधन में बाँधना है ताकि सामान्य लोग मानसिक स्तर पर सामाजिक नियमों के गुलाम बने रहें। यह साहित्य या कथा का नहीं, समाज का तर्क है। जिस सिर हिलाने या विद्यमान को समर्थन देने की बात ऊपर कही गई है, उसमें यह भी निहित है कि श्रोता या पाठक वास्तविक समाज की सचाई पहचान कर उसके अनुचित पक्षों को नकारना शुरू कर दे। इससे भी आगे समाज का प्रबुद्ध वर्ग जो शासकों की कृपा पर पलता है, साहित्य में यह संभावना देख सकता है कि उसका इस्तेमाल सामान्य जनता को प्रभावित करने के लिए हो। कहानी परंपरा के बारे में यह सोचना स्वाभाविक है कि कहीं उसकी आख्यान शैली-नीति-नियमों के प्रचार के लिए न विकसित की गई हो। इस नजरिए से देखने पर पंचतंत्र की कहानियाँ शिक्षा का माध्यम अधिक लगती हैं, मनोरंजन वहाँ केवल साधन की तरह इस्तेमाल हुआ है।

वास्तविकता भी यही है। कहानी रोचक होती है, घटना-प्रधान होती है, लेकिन साथ ही वह सामाजिक नियमावली को पुष्ट करने का एक कारगर तरीका भी सिद्ध होती है। इस तरह कहानी की वस्तु एक विशेष दिशा में ले जाने वाले सामाजिक सोच का पर्याय है। कहा जा सकता है कि भारतीय कथा परंपरा में दृष्टांतवादी होने का पक्ष काफी प्रबल है। कथा और कथावाचन का स्थापित तरीका धार्मिक और परंपरावादी सोच को अधिकाधिक ग्राह्य बनाना है।

5.4 वस्तु और शिल्प का सैद्धांतिक पक्ष

यह प्रश्न हमें कला से किंचित बाहर जीवन की जटिलता और संलिष्टता की तरफ ले जाता है। हम पाते हैं कि लेखक एक तरफ कला के क्षेत्र में सक्रिय होता है और इस तरह वह नई-नई कहानियाँ, नए-नए आख्यान गढ़ता है, लेकिन दूसरी तरफ बाकी के सामान्य लोगों की भाँति जिंदगी जीते हुए समाज की व्यापक मुश्किलों और समस्याओं से रू-बरू होता है। जिंदगी के बीच इस दूसरे स्तर पर सक्रिय रहने में उसे अतिरिक्त लाभ यह होता है कि गहरी संवेदनशीलता और बौद्धिक क्षमता के कारण वह जीवन के बदलावों को महसूस भी करता है और उनके गणित को समझता भी है। इस निरंतर घट रहे बदलावों पर नजर टिका पाने के कारण वह कहानी के विवरणों को भी सघन बनाने में सफल होता है। इस प्रक्रिया में उसकी विवेकशीलता समृद्ध होती है, और धीरे-धीरे वह समाज को वैचारिक-सांस्कृतिक नेतृत्व देने की स्थिति में आ खड़ा होता है। इतिहास के एक विशेष चरण में वह अपनी भूमिका को लेकर भी सक्षम और सजग हो जाता है। इस तरह देखिए कि कितनी चीज़ें उसके व्यवहार के दायरे में आ जाती हैं।

पहले हम सामाजिक जीवन के विवरणों की चर्चा करें। ऐसा नहीं है कि कहानी में कोई भी विवरण लाया जा सकता है, अथवा कोई भी विवरण कहानी पर आरोपित किया जा सकता है। लेकिन जीवन-स्थितियों में निरंतर होने वाले बदलावों के कारण कहानीकार की नजर अपने-आप नए सवालों पर टिकती है। धीरे-धीरे इन सवालों को महत्व भी पहले की निस्बत अधिक मिलने लगता है। समय के चलते समाज के नए विषय और अंतर्विरोध कहानीकार की दृष्टि के संक्षेप में कला अथवा साहित्य की वस्तु कहा जाता है। इस वस्तु की खासियत यह होती है कि इसका अपना चरित्र होता है और कहानीकार इस वस्तु को एक बिंदु से आगे नियंत्रित नहीं कर सकता। बल्कि अनेक अवसरों पर वस्तु के मूल चरित्र द्वारा परिचालित होता है। इसी तरह उसके हाथों लिखी जा रही कहानी भी उस वस्तु द्वारा परिचालित होती है। कहानी पढ़ते समय पाठक का ध्यान इस नई वस्तु की ओर जाता है और इसके दबाव में वह नए ढंग से सोचने को विवश होता है। वस्तु से अभिप्राय है, समाज के केन्द्रीय सवालों, सरोकारों और पक्षों की संपूर्ण उपस्थिति और उनकी संपूर्ण अनुशासनकारी प्रवृत्ति।

जहाँ तक शिल्प का संबंध है, वह (यानी शिल्प) काफी दूर तक कहानीकार अथवा साहित्यकार द्वारा नियमित-परिचालित होता है। व्यापक तौर पर शिल्प का चुनाव तथा उपयोग लेखक स्वंय करता है, और उसके उपयोग के लिए जिम्मेदार भी उसे ठहराया जाता है। पात्रों की परिकल्पना, स्थितियों के चुनाव, कहानी के आरंभ और अंत के निर्णय, संवादों अथवा वर्णनों की प्रधानता तय किए जाने के पक्ष, आदि चीजों के लिए स्वयं लेखक अपना लेखकीय अधिकार इस्तेमाल करता है। पाठक अथवा आलोचक द्वारा मिलने वाली प्रशंसा का अधिकारी भी वहीं होता है। लेकिन शिल्प में भी मनमानेपन की गुंजाइश एक सीमा से आगे नहीं होती, चूंकि लेखक अपने वक्त की बृहत रुचियों से अनुाशासित होता है। यदि वह अतिरिक्त मनमानी चलाने लगे तो पाठक की स्वीकृति पाने में सफल न होगा। इस अनुपात में उसकी अपील में भी कमी आएगी।

वह व्याख्या तथा बहस हमें अमूर्त लग सकती है, और यह अमूर्त है भी। लेकिन यहाँ प्रस्तुत तर्क की केन्द्रीय उपस्थिति किसी कहानी के भीतर पहचानी जा सकती है। इसे रेखांकित करने के लिए हमें हिन्दी की एक कहानी का उपयोग करें तो आलोचना के इस महत्वपूर्ण पक्ष को जानने में मदद मिलेगी।

5.5 प्रसिद्ध लेखक यशपाल की कहानी "पराया सुख" का उदाहरण

वस्तु और शिल्प को केन्द्र में रखते हुए हम अपनी व्याख्या यशपाल की चर्चित कहानी "पराया सुख" से करें। यह कहानी यशपाल के कहानी संग्रह "ज्ञानदान" (1944) में प्रकाशित हुई थी। उन दिनों यशपाल रचना और यथार्थ के अंतःसंबंधों पर चिंतन कर रहे थे, और मानते थे कि लेखक की दृष्टि निरंतर अपने बदलते परिवेश पर केन्द्रित रहनी चाहिए। मसलन, यशपाल ने "ज्ञानदान" की भूमिका में लिखा था कि -

"हम एक माप निश्चित करके वस्तुओं की नाप लेते हैं। नाप ही हमारी धारणा में वस्तुओं के परिचय और स्थिति का आधार होता है परंतु यह माप है क्या, माप का अपना अस्तित्व क्या है? एक गज या एक सेर हमारे अनुमान और धारणा में निश्चित सीमा के अतिरिक्त कुछ भी नहीं। उनका परिणाम और आयतन जितना है, उससे कम या अधिक भी हो

सकता था।..... अन्य वस्तुओं के अस्तित्व की एक धारणा निश्चित करने के लिए उपयोगी होकर भी माप (गज, सेर, गेलन या पाउंड) का अपना कोई स्वतः पार्थिव अस्तित्व नहीं है। यह केवल मान्यताएँ ही है। (यशपाल की संपूर्ण कहानियाँ, खंड-1, 401-2)

यशपाल के इस वक्तव्य की अनेक बातें उपयोगी हैं। उनकी सार्थकता साहित्य में मौजूद वस्तु और शिल्प का आकारे-प्रकार उजागर करने में है। मसलन, जिसे हम जीवन का सच कहते हैं, उसे जानने-समझने के लिए हम ऐसी धारणाओं का प्रयोग करते है जिनका "अपना कोई स्वतः पार्थिव अस्तित्व नहीं है"। समझने के दौरान इस्तेमाल की जाने वाली धारणाएँ असल में "मान्यताएं ही हैं" और इस अर्थ में वे मनुष्य-निर्मित और कृत्रिम हैं। लेकिन साथ ही उनकी उपयोगिता से इन्कार नहीं किया जा सकता। उनकी मदद से हम जीवन का सच देख पाते हैं। जीवन से जुड़कर, उसे देख और परख कर हम उसका भीतरी स्वभाव समझ पाते हैं। कृत्रिम मान्यताओं की जो भूमिका जीवन में है, क्या वहीं साहित्य के संदर्भ में भी सही नहीं है? साहित्य के माप या मानदंड जीवन के मानदंडों जैसे होते हैं, और उनके समानांतर सक्रिय होते हैं, क्या इसे अस्वीकार किया जा सकता है? आप इस सवाल को समझें और किंचित रुककर इस पर विचार करें। मसलन, क्या जीवन और साहित्य का गहरा संबंध नहीं है, और यदि है तो जीवन की परख साहित्य की परख से किसी न किसी रूप में जुड़ न जाएगी?

अपने जवाब से मदद लेकर अब हम साहित्य के व्यापक स्तर से हटें और कहानी-संबंधी विषय पर आएं। कहानी का एक माप या मानदंड उसकी रोचकता है, और दूसरा मानदंड उसका जीवन-जैसा होना है। इसकी ओर ऊपर संकेत किया गया है। हम यह भी ध्यान रखें कि रोचकता और जीवन-जैसा होना हमारी पसंद-नापसंद और निजी दृष्टि पर आधारित होता है। यदि यह एक सीमा तक हो, तब भी होता तो है ही। जो भी हो, हम इन दो मानदंडों का इस्तेमाल करके कहानी के गुण और चरित्र का बखान कर सकते हैं। इन्हीं दो मानदंडों का इस्तेमाल करके यशपाल ने अपनी कहानी "पराया सुख" गढ़ी है। चूंकि यशपाल सजग कथाकार हैं, इस नाते हम पाते हैं कि उनके संदर्भ में "गढ़ना" एक बेहद सार्थक शब्द है। आइए देखें, "पराया सुख" में क्या कहा गया है।

5.6 "पराया सुख" का घटना-क्रम और ताना-बाना

"पराया सुख" के दो प्रमुख पात्र मिस्टर सेठी और उर्मिला हैं। सेठी अधेड़ उम्र का अविवाहित पुरुष है और उर्मिला संघर्षशील मध्यवर्गीय विवाहिता स्त्री। उर्मिला का पति मामूली सरकारी नौकर है, और पति-पत्नी छोटे पुत्र सहित सीमित परिवार के दायरे में सामान्य संतुष्ट जीवन व्यतीत कर रहे हैं। साथ ही इस परिवार की "सामान्य संतुष्टि में कुछ ऐसा छुपा है जो वहाँ के अभावों को अधिक देर तक नजर से परे नहीं रख सकता। मध्यवर्ग की ऐसी स्थिति में यह मूल कमजोरी की भाँति विद्यमान है।

कहानी में प्रेम त्रिकोण तब बनता है जब पहाड़ी इलाके में यात्रा के दौरान एक दिन सेठी और उर्मिला लंबा समय साथ गुजारते हैं। इस स्थिति के व्यापक अनुशासन में सेठी उर्मिला की ओर आकृष्ट होता है। यह आकर्षण पाठक को पूरी तरह अस्वाभाविक लग सकता है। लेकिन लेखक को इस अस्वाभाविकता से कोई परेशानी नहीं है। जिस कृत्रिम मानदंड की ओर यशपाल ने अपने वक्तव्य में इशारा किया है, वह कहानी में स्पष्ट देखा

जा सकता है। मिस्टर सेठी ने मेहनत के बल पर अपनी ज़िंदगी स्वयं बनाई और इस तरह वह निर्धनता से धनी बनने की मंजिल तक योजनाबद्ध तरीके से पहुंचे। कहानी में सेठी की कर्मठता और लगन से मिली उन्नति को सफलता की मिसाल कहा जा सकता है। कहानी का वाचक पात्र के स्वर में स्वर मिलाकर उक्त मंजिल तक पहुँचने की कहानी इन शब्दों में कहता हैः

पिता के देहांत के कारण एफ.ए. में पढ़ाई छोड़ने के लिए मजबूर हो जाना, जीविका का कोई उपाय न पाकर जगह-जगह भटकना, एक ठेकेदार के यहाँ बीस रूपये माहवार पर चैबीस घंटे हड्डीतोड़ परिश्रम ....दूसरे ठेकेदारों का काम ठेके पर कराना और बड़ा ठेकेदार बन जाना, एक के बाद दूसरा ठेका। जिस रूपये के लिए उसे दर-दर मारा-मारा फिरना पड़ा था वहीं रूपया हजारों-लाखों की तादाद में उसके हाथों से आने-जाने लगा। रेल के पुल के ठेके में एकमुश्त ढाई लाख का मुनाफा ...।

सेठी ने जीवन में एक चीज रूपये को पहचाना था। रूपये की चाह में उसने दिन को दिन और रात को रात न समझा था। आज वह लखपती है।" (239)

हम यहाँ ध्यान रखें कि वाचक और पात्र के इस स्वर को लेखक ने सतही आधुनिक विचारधारा का वाहक बनाया है। तभी सेठी को सब कुछ मिल गया है, फिर भी वह अंदर से खाली है। जीवन में मिली आर्थिक सफलता के बावजूद सेठी को अपनी बेचारगी और दयनीयता तब समझ आती है जब वह सामने छोटी गृहस्थी का सुख भोगते उर्मिला और उसके शिशु को देखता है। यह एक भरी-पूरी जिंदगी है, जो सेठी को नसीब नहीं। वह यद्यपि जानता है कि विवाह करके गृहस्थी बसाना उसके लिए कभी मुश्किल न था। जो व्यक्ति इतना बड़ा कारोबार खड़ा करने में सक्षम हुआ, उसके लिए किसी भी स्त्री से विवाह करना संभव था। लेकिन उसकी समस्या दूसरी थी। वह विवाह में विश्वास न करता, इसके विपरीत उसे विवाह की दुनिया में आधुनिक सफलता-केंद्रित दुनिया का छलावा नजर आता था। लेखक के शब्दों में :

"सेठी को घेर कर प्रेम और प्रणय के कितने ही अभिनय हो चुके थे। उन लजीली या मुग्ध आँखों में उसे केवल रूपये का लोभ दिखाई दिया, उसे फँसाने का यंत्र। यह सब देखकर वह भीगी मक्खी क्योंकर निगल जाता, उसे किसी ने आकर्षित नहीं किया। वह उन्हें गुड़ की भेली पर मंडराने वाली मक्खियों और ततइयों की तरह हँका देता था। उसका लक्ष्य था रूपया"। (239-40)

उर्मिला के प्रति सेठी के आकर्षण में जो चीज शामिल है, उसका संबंध एक तरफ उर्मिला के सीमित साधनों से है, और दूसरी तरफ सेठी की अपनी आर्थिक शाक्ति से है - धन के बल पर वह उर्मिला और उसके पूरे परिवार को खरीद सकता है। सेठी की मानसिकता पर पूंजी हावी है। वह अपनी शर्तों पर इस परिवार से गलत-सही सब चीजें मनवा सकता है। यही वह करता है।

आधुनिक युग में धन क्या कर सकता है, यशपाल इसका उदाहरण "पराया सुख" में दिखलाते हैं। सेठी को इस उद्देश्य की पूर्ति के हेतु कहानी में केंद्रीय स्थान मिला है। मसलन, वह उर्मिला के पति को अपनी कंपनी में अधिक वेतन पर नौकरी देता है, उर्मिला द्वारा घर के लिए कर्ज की अदायगी करता है, और उसके परिवार को समृद्धि के नए स्तर पर प्रतिष्ठित करता है, लेकिन इसके लिए जो शर्त वह रखता है वह हैः

सेठी ने कह दिया था कि अपनी संपूर्ण संपत्ति बल्लू (उर्मिला के बेटे) को दे देगा परंतु उस संपत्ति में बल्लू का कोई हिस्सेदार नहीं आना चाहिए। ... स्पष्ट शब्दों में इसका अर्थ था कि उर्मिला की कोख पर ताला लगाकर सेठी ने उस पर अपना अधिकार कर लिया था; वह उसे छुए या न छुए। बल्लू भी उसी का है, मदन (उर्मिला का पति) भी उसी का है और उर्मिला सबसे पहले उसकी है। (248)

यहाँ सेठी के माध्यम से कही जाने वाली टिप्पणी पर गौर करें। इसमें विशेष ध्यान खींचने वाले शब्द हैं :"संपूर्ण संपत्ति दे देगा", "हिस्सेदार", "कोख पर ताला", और "अधिकार"। ये चारों पूंजी से ताल्लुक रखते हैं। सेठी स्वयं पूंजी के कब्जे में रहकर काम करने वाला अदना मोहरा है और इस तथ्य ने उसकी भाषा बदल दी है। दूसरी तरफ उसकी इच्छा प्यार पाना न होकर उर्मिला पर कब्जा जमाना है, बल्कि इससे भी आगे उर्मिला की कोख पर ताला लगाकर चाबी अपने पास रखना है। जीवन में संतुष्टि की उसकी परिभाषा यह है।

इस बिंदु पर पूछा जा सकता है कि "पराया सुख" की वस्तु असल में क्या है और किस भाँति आज का पाठक उससे भावनात्मक अर्थ में जुड़ सकता है? इसका जवाब यह है कि बीसवीं सदी का भारतीय समाज नए विचारसूत्र और मांनदंड गढ़ने में लगा है, जिनके अनुसार परंपरागत संस्थाओं का टूटना या बदलना अनिवार्य है। नयी स्थिति में धन का वर्चस्व कारण हुआ है, जो कारक की तथा जीवन के सब स्तरों पर असल डाल रहा है। कहानी के घटना-क्रम में यह चीज स्पष्ट दिखती है। भावना के स्तर पर चीजों को समझें तो अधेड़ व्यक्ति की मानसिकता में स्त्री-देह को वश में करना महत्वपूर्ण है, न कि प्रेम की परिधि में संबंध कायम करना। इससे भी आगे "पराया सुख" में संबंध बनाना उद्देश्य नहीं, बल्कि सौदा करने पर बल है। जाहिर है, सौदे के असर में मनुष्यों का चरित्र बदल जाता है - वे मनुष्य न रहकर क्रय-विक्रय के बनी जिंस में तबदील हो जाते हैं। मुख्य पात्र सेठी की समझ में अनुरूप ढली इस कहानी में शुरू से अंत तक सौदे का तर्क है, सौदे की शब्दावली है।

कहानी के गठन को समझने की कोशिश करते समय हम यह ध्यान भी रखें कि पूरे घटना-क्रम की शुरूआत स्टेशन पर एक अपरिचित विवाहिता महिला के सेठी द्वारा देखे जाने से हुई है। यह क्षण सेठी के निर्णायक सिद्ध होता है, जब नई योजना का बीज उसके मस्तिष्क में जन्म लेता है। पूरी कहानी इस योजना को फलीभूत होने अथवा किए जाने की है। इस गठन के अंतर्गत विशेषकर उर्मिला एक पात्र है, जो सक्रिय भी है और असहाय भी। कहानी में निरंतर दिख रही लड़ाई सेठी और उर्मिला के बीच पलने वाली लड़ाई है। यद्यपि तय है कि उक्त लड़ाई में विजय सेठी की होगी, चूंकि उसके पास धन का अस्त्र है, फिर भी यशपाल जिस भाँति संघर्ष की प्रक्रिया दिखलाते हैं उसे देखकर कहा जा सकता है कि रचना में व्यक्तिगत और व्यापक दोनों का प्रभावी और अर्थपूर्ण निर्वाह हुआ है। यह शिल्प का ऐसा निर्वाह है जो एक-साथ निंबंध और रचनाशीलता को जोड़ने से होता है। इस अर्थ में यह कहानी सेठी और उर्मिला की भी है और उस समाज की भी जिसमें पूंजी की ताकत उसके भरपूर अंदाज में परखा गया है। यानी संघर्ष की प्रक्रिया को निबंधात्मकता के सहारे प्रस्तुत किया गया है, जो शिल्प का पक्ष है, और दूसरी तरफ समाज की व्यापक सच्चाई का केन्द्र में रखते हुए लेखकीय समझ के आधार पर एक रूपक तैयार किया गया है। यदि यह रूपक तैयार न किया जाता तो कहानी सेठी या उर्मिला के व्यक्तित्व से परिचालित होकर मात्र दो व्यक्तियों की कहानी बन जाती।

हिन्दी कथा आलोचना में इस कहानी को विषय बनाकर कई चीजें कही गई हैं। इनमें से ज्यादातर नकारात्मक हैं। कारण यह हो सकता है कि उन्नीस-सौ पचास के दशक में न सिर्फ पारंपरिक लोकप्रिय कहानी पर हमला किया जाता था, बल्कि उद्‌देयपरक कहानी को कोशक की नजर से देखा जाता था। जिस लेख का मैं हवाला दे रहा हूँ, वहाँ कहानी पर नकलीपन का आरोप लगाया गया है। वहाँ इस कहानी को प्रगतिशील रचना माना गया है जिसमें जीवन एवं यथार्थ को ध्यान में रखा जाता है। इससे पहले कि मैं उस उद्धरण को प्रस्तुत करूँ, एक-दो सामान्य बातें कहना आवश्यक है।

स्पष्ट है कि प्रगतिशील रचना उद्‌देयपरक होती है और वह पाठक को, उसकी चेतना के विकास-स्तर को देखते हुए लिखी जाती है। प्रगतिशील रचना का उद्‌देश्य किसी दृष्टिकोण को अनुचित और किसी अन्य को उचित बतलाना होता है, ताकि पाठक उसे पढ़कर लाभान्वित हो सके। प्रगतिशील रचना में उद्‌देश्य के अधीन ऐसी लेखकीय संदेश मिलता है जिसे स्वीकार करने की प्रेरणा पाठक को दी जाती है।

दूसरी ओर कला और स्वतंत्रता के हामी रचनाकार यह मानते हैं कि कथा-रचना में पात्रों को स्वयं विकास करने का अवसर मिलना चाहिए। इस दृष्टिकोण के अनुसार लेखक के लिए कहानी की अपनी आंतरिकत संगति को पहचानना आवयक है। वहाँ पात्रों को उनके हाल पर छोड़ना होता है, ताकि पढ़ने वाला व्यक्ति पात्र की शक्ति या सीमा को अपनी शक्ति या सीमा से जोड़कर देख सके। साथ ही यह भी आवश्यक माना जाता है कि लेखक अपनी कहानी में प्रस्तुत पात्र के मनोवैज्ञानिक सच को, और उसकी परिवेशगत स्थिति को पूरी तरह जानता हो। यह तर्क अंततः उद्‌देश्य और सामाजिक सार्थकता जैसे तत्वों को रचना के लिए बाहरी एवं अनुपयोगी मानता है। ऐसा तर्क रूपवाद अथवा कलावाद के अतंर्गत तो दिया ही जाता है, किन्ही संदर्भों में वास्तविकता एवं सच्चाई के नाम पर भी दिया जा सकता है। सन् उन्नीस-सौ पचास और साठ के दशकों में यह काम नई कहानी को परिभाषित करते समय भी किया गया। नई कहानी पूरे आवेग से शिल्प का सवाल उठाकर कहती थी कि कथा में शिल्प का प्रयोग रचना की आंतरिक आवयकता के अनुसार किया जाना चाहिए।

यहाँ शिल्प और विषय दोनों के बारे में किंचित विस्तार से विचार करना निश्चय ही उपयोगी सिद्ध हुआ। लेकिन इस कहानी पर एक अन्य तरह भी विचार संभव है। यही वह पक्ष है जिसका हवाला नकारात्मक आलोचना के सिलसिले में ऊपर दिया गया है। मसलन, कथाकार और समीक्षक मार्कंडेय अपनी चर्चित पुस्तक "कहानी की बात" में यशपाल - कहानी जीवन के लिए" शीर्षक का इस्तेमाल करके अपना मंतव्य प्रस्तुत करते हैं। इस शीर्षक से चौंकिए नहीं, मार्कंडेय का एतराज यह जान पड़ता है कि कहानी को जीवन के लिए नहीं होना चाहिए, चूंकि तब कथा के अंतःतत्व की हानि का भय है। वह कहते हैं : जीवन कुछ अजीब-सा शब्द है - विशेषतः कहानी पर बातचीत के सिलसिले में। अगर यह कहा जाता कि कहानी राम के लिए, कहानी मनोहर के लिए या कल्लू, मल्लू अथवा सेठ गोपीचंद के लिए है तो बात समझ में आती है, क्योंकि इनमें से किसी-न-किसी को आप जरूर जानते हैं। हो सकता है कि आप खुद इनमें से कोई एक हों, और यह जानकर निराश हो उठें कि भाई, यह कहानी मेरे लिए नहीं। जीवन साहब तो जरा ऊंचे आदमी हैं, चलते-फिरते खाते-पीते।

...ऐसे ही समय आदमी पल भर को अपनी ओर लौटता है। ...सवाल यह है कि क्या वह

कभी अपने जीवन की मूल सचाईयों तक पहुँच सकता है, जहाँ से वह सामाजिक एवं आर्थिक एवं क्रांति के रास्ते पर अग्रसर हो सके?

यशपाल उत्तर देते हैं, "फिलहाल नहीं"।

..."पराया सुख" नामक कहानी में ठेकेदार सेठी से अप्रत्याशित परिस्थिति में मुलाकात होने के बाद उसके सौम्य व्यवहार और प्रेमी का सुख तो विवाहिता उर्मिला लेती रही, लेकिन वह यह नहीं कह सकी कि अपने पति मदन को छोड़कर सेठी से ब्याह करने की बात सोचती, जबकि मदन के बारे में (चाहे अपनी बेवफाई के संदर्भ ही में सही) पूरी कहानी में एक बार भी सहानुभूतिपूर्वक नहीं सोचती। यदि इस कहानी में यशपाल ने अपनी प्रगतिशील दृष्टि को वास्तविकताओं के अंतःसंघर्ष में डाला होता, तो शायद परंपराओं और रूढ़ियों में जकड़ी नारी की लाचारी का यह मार्मिक पक्ष सामने आता, कि वह चाहे उसकी शारीरिक और मानसिक संभावनाएँ कितनी ही प्रबल क्यों न हों, वह तो उसी की होकर रहेगी, जिसके साथ उसकी सप्तपदी हो चुकी है। (75-77)

यशपाल की "पराया सुख" कहानी का यह वैकल्पिक पाठ है। इस टिप्पणी में जिन बीज शब्दों की मदद से तर्क गढ़ा गया है वे हैं :"यह कहानी मेरे लिए नहीं", "आदमी पल भर के लिए अपनी ओर लौटता है", "सामाजिक एवं आर्थिक क्रांति", "पति ... को छोड़कर सेठी से ब्याह करने की बात", "बेवफाई" और "सहानुभूतिपूर्वक", "नारी की लाचारी का ... मार्मिक पक्ष"। इन शब्दों में एक पूरा दृष्टिकोण देखा जा सकता है। मार्कंडेय कहानी में पाठक निजता खोजते हैं और मानते हैं कि यदि कहानी पाठक के निजी अनुभव से मेल नहीं खाती तो वह पाठक के काम की नहीं। मसलन, किसी कहानी को पढ़कर पाठक "पल भर के लिए अपनी ओर लौटता है", मार्कंडेय को सीधे दृष्टिकोण से भी शिकायत है। वह चाहते हैं कि कहानी के पात्र में अंतःसंघर्ष अवश्य हो। आलोचक कहानी में ऐसी वस्तु ढूँढना चाहता है जो पाठक के वर्तमान से जुडी हो। फिर रूप को लेकर भी मार्कंडेय के आग्रह हैं कि वहाँ विचार करने और सोचने पर बल हो, और पात्र-लाचारी का पक्ष तीव्रता से उभरता हुआ दिखे।

5.7 सारांश

इस अध्याय में आपने कहानी के बारे में कुछ सामान्य बातों का परिचय पाया और देखा कि किस तरह कहानी सांस्कृतिक-साहित्यिक वातावरण के बीच मौजूद महत्वूपर्ण उपस्थिति है। हर कहानी अपने वक्त के दबावों को झेलती है और उनमें कुछ नया भी जोड़ती है। साथ ही वह आलोचना-प्रत्यालोचना का विषय भी बनती है। इन सब चीजों का संबंध उसकी सामयिकता से, या फिर उसके रुचिकारी पक्ष से होता है। जो भी हो, कहानी वस्तु और रूप से जुड़े इन सवालों से कमोबेश मुखातिब होती है और पाठक का सामना इन पक्षों से, उनके स्वभाव और चरित्र से कराती है। हम यह भी देखते हैं कि काल-क्रम की विभिन्न अवस्थाओं में कहानी की वस्तु भी बदलती है उसका रूप भी काल के प्रभावों तथा कलाकार की रुचि के अनुसार या समाज-सापेक्ष हो जाता है, या मनोवैज्ञानिक अथवा दार्शनिक, आदि। इन विविधताओं और भिन्नताओं के कारण कहानी में विकास देखने को मिलता है तथा उसके प्रभाव में, उसकी अपील में वृद्धि होती है।

अभ्यास

1. कहानी में विद्यमान वस्तु के अर्थ और चरित्र पर प्रकाश डालिए।

2. कहानी के रूप को यथार्थ से क्या संबंध है? साथ ही, यदि यथार्थ में बदलाव आए तो उसका कहानी के रूप पर क्या प्रभाव पड़ता है? स्पष्ट करें।

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

इकाई 6 कहानी की भाषिक संरचना

इकाई की रूपरेखा

6.0 उद्देश्य

6.1 प्रस्तावना

6.1.1 भाषा और साहित्य का रिश्ता

6.1.2 निश्चित और रूढ़ अर्थों की भाषा

6.1.3 तरल अर्थों की भाषा

6.1.4 भाषा और संवेदना

6.1.5 गद्य और पद्य

6.2 कहानी का गद्य

6.3 कहानी की संवेदनात्मक संरचना और भाषा की भूमिका

6.4 कहानी की भाषिक विधियाँ

6.4.1 इतिवृत्त

6.4.2 विवरण और विस्तार

6.4.3 विहंगम (sweep) और केन्द्रिक (focus)

6.4.4 रूपकीय संक्षेपण

6.5 सारांश

अभ्यास

6.0 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई को पढ़कर आप जान सकेंगी/सकेंगे कि

- साहित्यिक भाषा और सामान्य भाषा में क्या रिश्ता है?
- भाषा की संरचना वास्तव में संवेदना की संरचना भी होती है।
- आधुनिक कहानी की भाषिक संरचना के विविध रूप और प्रकार क्या हैं?
- कहानी की संरचना किन भाषिक विधियों से संभव होती हैं?

6.1 प्रस्तावना

संरचना अंग्रेजी के 'स्ट्रक्चर' शब्द के हिन्दी पर्याय की तरह गढ़ा गया शब्द है लेकिन संरचना में 'स्ट्रक्चर' के सभी अर्थ शामिल नहीं हैं, केवल वही अर्थ संकेतित व ग्रहीत हैं जो संरचना की समाजशास्त्रीय व साहित्यिक अवधारणा के लिए हिन्दी में एक नये शब्द की अपेक्षा रखते हैं। 'स्ट्रक्चर' का एक अर्थ इमारत या ढाँचा भी है। संरचना के अर्थ में 'ढाँचे' का वैचारिक आयाम तो शामिल है, 'इमारत' वाला आयाम नहीं।

आप जानती/जानते होंगे कि संरचना का अर्थ किसी वस्तु के निर्माण में संयुक्त होने वाले विभिन्न घटकों और तत्वों का संयोजन है। इसे थोड़ा खोलकर इस तरह कहा जा सकता है कि 'एक' सम्पूर्ण वस्तु का अंश/अंग/खण्ड या तत्व कहा जाता है। संरचना वस्तु की भी होती है, विचार की भी।

सम्पूर्ण वस्तु या विचार के निर्माण में उसके अंशों/अंगों/खण्डों/तत्वों के संयोजन की विधि को संरचना कहते हैं। उदाहरणार्थ दानुक्रमिक सामाजिक संरचना या शारीरिक संरचना।

संयोजित वस्तु के स्वरूप या रूपकार को भी संरचना कहते हैं जैसे वृत्ताकार या चतुष्कोणीय या त्रिकोणीय संरचना। किसी जटिल वस्तु के निर्माण में उसके विभिन्न अंगों के परस्पर सम्बन्ध/व्यवस्थापन को भी संरचना कहते हैं। जैसे राजनीतिक संरचना, कथानक की संरचना। भाषिक संरचना, कहानी की संरचना, और कहानी की भाषिक संरचना के परस्पर जुड़े हुए सवाल संरचना के अर्थ की इसी कोटि में आते हैं।

संरचना के साथ जुड़ा हुआ दूसरा शब्द है रूप। रूप और संरचना सघन रूप से सम्बन्धित, परस्पर आश्रित और कभी–कभी समानार्थक अंग में प्रयुक्त होते हैं लेकिन फिर भी वे एक दूसरे का पर्याय नहीं है। रूप एक सम्पूर्ण परिसमाप्त इकाई है, संरचना उस सम्पूर्ण इकाई के भीतर उसकी लघुतर इकाइयों का संयोजन और उनके परस्पर सम्बन्ध का नाम है। रूप संरचना का परिणाम है। संरचना रूप की प्रक्रिया है। रूप संरचना का बहिरंग है, संरचना रूप का अंतरंग है। रूप के विश्लेषण में संरचना की प्राप्ति होती है। संरचना रूप के उन घटकों के संश्लेषण का नाम है जिनके विश्लेषण से हम वापस संरचना तक पहुँचते हैं। कहानी की संरचना के बारे में बात करते समय हम इस बात को सोदाहरण समझेंगे।

6.1.1 भाषा और साहित्य का रिश्ता

शीर्षक से ऐसा आभास होता है कि भाषा और साहित्य दो अलग–अलग चीजें हैं क्योंकि सम्बन्ध दो अलग–अलग चीज़ों के बीच में ही खोजा जाता है। लेकिन भाषा और साहित्य के बीच वास्तव में ऐसा है नहीं। साहित्य भाषा के द्वारा भाषा में रचा जाता है और भाषा में ही वर्तमान रहता है। ऐसी भाषा तो हो सकती है जो साहित्य न हो लेकिन ऐसा साहित्य नहीं हो सकता जो भाषा न हो। इस विचार–विमर्श से सम्बद्ध जो साहित्य पाठ्यक्रम में संलग्न है वह समस्त भारतीय भाषाओं का है किन्तु इस आलेख में सभी उदाहरण हिन्दी भाषा के ही हैं। इसका कारण यह है कि वे अवधारणाएँ साहित्य और भाषा के अंतःसम्बन्ध के विषय में हैं और उन सामान्य गुणों की चर्चा करती हैं जो सभी भाषाओं को साहित्यिक बनाती है, इसके अलावा अध्येता सामान्यतः हिन्दी भाषी हैं और अन्य सभी भारतीय भाषाओं को हिन्दी अनुवाद के माध्यम से ही पढ़ रहे हैं। अवधारणाओं को उदाहरण के द्वारा ही समझाया जा सकता है। इसके लिए अनूदित साहित्य की अपेक्षा मौलिक साहित्य की भाषा ही अधिक उपयुक्त है क्योंकि उसमें रचनात्मक प्रतिभा के सृजनकौशल को अनुवादक के हस्तक्षेप के बिना, मौलिक रूप में पाया जा सकता है। उदाहरण के चुनी गई कहानियों यथासंभव आपकी परिचित ओर प्रसिद्ध कहानियाँ हैं।

भाषा के प्रयोग की एक विशेष विधि को साहित्य कहते हैं। स्पष्ट है कि भाषा के प्रयोग की कोई दूसरी विधि भी है जो इस विशेष विधि से भिन्न है। अध्ययन की सुविधा के लिए हम इसे सामान्य भाषा कहेंगे।

6.1.2 निश्चित और रूढ़ अर्थों की भाषा

जीवन के व्यावहारिक प्रयोजन के लिए रूढ़ अर्थ ही अनिवार्य हैं अतः दैनिक जीवन के सामान्य प्रयोग की भाषा निश्चित, स्थिर और रूढ़ अर्थों से बनती है। शास्त्र और विज्ञान की भाषा इस प्रकार के अर्थ की प्रथम कोटि है। इस कोटि के लिए जरूरी है कि अर्थ पूरी तरह से रूढ़ अर्थात् निश्चित और निर्धारित हो। इसे पारिभाषिक शब्दावली कहते हैं। प्रयोगशाला में किसी प्रयोग के दौरान काल की अवधि, चिकित्सा में दवाई की डोज, ऐसे ही अन्य अनेक संभावित प्रसंगों में वस्तुओं की मात्रा और भार इत्यादि ऐसे ही अर्थ है जो जैसे हैं, बस वैसे ही हो सकते हैं। उनमें कहने–समझने के बीच तनिक भी अस्पष्टता और फेर–बदल की गुंजाइश नहीं। ज़रा सी भी गलतफ़हमी गलत निष्कर्षों का या दुर्घटना का कारण बन सकती है। समाजशास्त्र, अर्थशास्त्र, राजनीति, भूगोल, खगोल, जीवशास्त्र, रसायनशास्त्र, भौतिक विज्ञान आदि सभी शस्त्रों के पास अपनी अपनी पारिभाषिक शब्दावलियाँ हैं। ऐसी निश्चित शब्दावली के बिना उनका काम चलना असंभव है।

सामान्य जीवन में रोज़मर्रा का काम–काज भी हम इसी विधि की भाषा के सहारे चलाते हैं। यद्यपि ये अर्थ पारिभाषिक शब्दावली की तरह के अतिशय रूढ़ तो नहीं हैं, फिर भी बाज़ार के सिलसिले में किलो, मीटर और लीटर के निश्चित अर्थ, किसी के साथ मुलाकात के लिए निश्चित समय, कहीं तक पहुंचने के लिये रास्ते का निर्देश, विधि में सामग्री की मात्रा और भार उठाने रखने, ले आने–ले जाने के निर्देश इत्यादि की भाषा रूढ़ अर्थों से ही बनती है।

व्यावहारिक प्रयोजन के लिये भाषा का सबसे पहला काम सूचना और संकेत है। 'चौराहे पर लाल बत्ती हो गयी' कहने का अर्थ रुक जाने की सूचना है। 'आसमान बुरी तरह से घिर गया है' कहने का अर्थ बरसात होगी या तूफान आएगा। इन अर्थों को हम रूढ़ या निश्चित निर्धारित अर्थ मान सकते हैं। इसके पीछे निश्चित ज्ञान और सूचना का निश्चित संप्रेषण है कि लाल बत्ती यातायात का नियंत्रण करती है या जब आसमान बुरी तरह से घिरता है तब बारिश या आँधी आती है। कारण और परिणाम के इस संबंध से परिचित हर व्यक्ति को इन शब्दों से यही अर्थ मिलेगा।

यह व्यापक और यथातथ्य संप्रेषण के लिए स्पष्ट कथन और निश्चित अर्थ की भाषा है। इसे सामान्य सामुदायिक भाषा भी कहा जा सकता है क्योंकि उस भाषा को बोलने वाले समाज का पूरा जन–समुदाय उसे जानता व समझता है। भाषा एक सामाजिक उत्तराधिकार है जो समाज विशेष के हर मनुष्य को समान्यतः प्राप्त हुई है।

6.1.3 तरल अर्थों की भाषा

जीवन का बहुत बड़ा हिस्सा निश्चित, निर्धारित भाषा के द्वारा चलाया जाता है। लेकिन उतना ही बड़ा हिस्सा इसकी हदों के बाहर भी रह जाता है। दूध, तेल, पानी की मात्रा की नाम के लिए लीटर या आलू, प्याज के भार की तौल के लिए किलो का इस्तेमाल किया जा सकता है। प्रेम, हँसी, उत्साह, विस्मय की मात्रा या क्रोध, भय, घृणा, आँसू के भार और विस्तार को लीटर, मीटर या किलो में नहीं नापा–तौला जा सकता। उसकी अभिव्यक्ति में भाषा के प्रयोग की व्यक्तिगत विशेषताएँ काम करती हैं। जिसने जैसा महसूस किया उसे ठीक वैसा ही बयान करने की कोशिश में वह अपनी भाषा में तरह–तरह की युक्तियों का इस्तेमाल करता है।' साहित्य ऐसी युक्तियों का संचित कोश हैं। शेक्सपीयर के नाटक 'हैमलट' में जब ओफीलिया की मृत्यु पर 'हैमलेट' कहता है,

दुनिया भर के समुद्रों का पानी मिल कर उन आँसुओं के बराबर नहीं होगा जो मेरे हृदय में जमा हैं" या "चालीस हजार भाइयों का प्यार मिल कर उस प्यार के बराबर नहीं होगा जो मैंने ओफिलिया से किया" तो उसका मतलब यह नहीं है कि उसने दुनिया भर के समुद्रों को पानी नाप लिया है, और न यही कि ओफ़िलिया के सचमुच चालीस हजार भाई थे। वह अपने दुख की निरुपमता और अतिशयता को अभिव्यक्त करने की कोशिश कर रहा है। यह सामाजिक उत्तराधिकार से मिली भाषा का निजी प्रयोग है। इसे तरल अर्थ की भाषा कहने का तात्पर्य यह नहीं कि उसमें शब्दों का कोई निर्धारित अर्थ है ही नहीं, बल्कि केवल इतना कि वह संदर्भ–सापेक्ष होता है और स्वयं निष्पन्न होने के लिये निर्धारित अर्थ का ही सहारा लेता है ऐसी व्यक्तिगत अभिव्यक्ति कभी–कभी सामुदायिक स्वीकृति से रूढ़ि में भी बदल जाती है। एक व्यक्ति द्वारा कही गयी बात को पूरा समाज अपना लेता है। वह व्यक्ति प्रायः कवि होता है और उसकी उक्तियों में पूरा समाज अपने मन की बात को प्रतिच्छवित पाता है। हिन्दी भाषा समाज में तुलसी ऐसे ही कवि हैं। उनके द्वारा रचित 'समरथ को नहिं दोस गुसाई' या फिर 'पराधीन सपनेहुँ सुख नाही' जैसे अन्य अनगिनत दोहे और चौपाइयों के अंश पूरे समाज में कहावतों और मुहावरों की तरह प्रचलित हो गये हैं।

बच्चे को प्यार करते हुए जब माँ उसे मेरा चाँद, मेरा छौना, मेरा बछरू, मेरी जान जैसे शब्द कहती है तो प्रत्यक्ष है कि उसका मतलब अपने बच्चे को धरती का उपग्रह चाँद या हिरन/बकरी/गाय का बच्चा इत्यादि कहना नहीं है।' "कुत्ते, मैं तेरा खून पी जाउँगा" जिससे कहा जा रहा है वह सचमुच का कुत्ता नहीं है। सचमुच के कुत्ते से कोई यह बात नहीं कहेगा और न कुत्ता ही इस बात को समझेगा।

इस तरह की अभिव्यक्तियों का आरंभ निश्चित, निर्धारित अर्थ के रूप में नहीं हुआ करता लेकिन वे हमारी समझ में उतनी ही आसानी से आ जाती हैं, जैसे कोई निश्चित–निर्धारित अर्थ वाली अभिव्यक्ति आती है। हर भाषा में ऐसे मुहावरों का पूरा कोश हुआ करता है जिनका मंतव्य उनके शब्दों से अलग हुआ करता है। 'दिल बल्लियों उछलने लगा या दिल बाग–बाग हो गया' का मतलब यह नहीं है कि दिल को 'हाई जम्प' (ऊँची कूद) प्रतियोगिता में शामिल किया जा सकता है और न यही कि वह शाम की सैर के लिए पब्लिक पार्क की जगह जा सकता है। हम जानते हैं कि इन मुहावरों का अर्थ बहुत खुश हो उठना है। कहावतें भी इसी कोटि की अभिव्यक्तियाँ हैं। 'थोथा चना बाजे घना' का कोई सम्बन्ध चने के लिए कीटाणुनाशक की जरूरत से या "अधजल गगरी छलकत जात" का नदी से नहीं है। इन कहावतों में खोखले अहंकार पर व्यंग्य है। अर्थ के रूढ़ हो जाने के बावजूद मुहावरेदार भाषा आज भी अभिव्यक्ति का एक विशेष कौशल है। तरल अर्थों की भाषा को भारतीय काव्यशास्त्र ने व्यंजना की भाषा कहा है।

रूढ़ अर्थ की भाषा और व्यंजना की भाषा का सम्बन्ध भाषा स्वयं एक संरचना है। प्राथमिक स्तर पर शब्द अपने अर्थ के साथ और वाक्य के भीतर विभिन्न शब्द अपनी कारक–भूमिकाओं के अनुसार एक दूसरे के साथ सम्बन्धित होते हैं। यह भाषा की प्राथमिक तथा व्याकरणिक संरचना है। अगला स्तर भाषा की अर्थगत्, संवेदनात्मक और प्रायोगिक संरचना का है। तरल, अनिश्चित और अनेकमुखी अर्थों वाली व्यंजना की भाषा साहित्य की भाषिक प्रयोग विधि है।

लेकिन इसका अर्थ यह नहीं है कि उसके अर्थ की कोई दिशा नहीं होती या उसका मनचाहा अर्थ लगाते हुए अनर्थ किया जा सकता है। प्रयुक्त भाषा में उसका अर्थ संकेतित रहता है। वास्तव में सामान्य भाषा और साहित्यिक भाषा के बीच गहरा सम्बन्ध है। एक

ही शब्दकोश, एक ही व्याकरण–व्यवस्था, दोनों एक ही सामग्री के दो प्रकार के संयोजन अर्थात संरचनाएँ हैं। सामान्य भाषा ही विशेष रूप से प्रयोग में आकर साहित्यिक भाषा बन जाती है। इस विशेष रूप का संयोजन कल्पना द्वारा होता है।

रूढ़ होने के पहले मुहावरों में एक ताज़गी और नयापन रहा होगा। चक्करदार बनाने के पीछे एक उद्देश्य रहा होगा। वही ताज़गी और वही उद्देश्य साहित्यिक भाषा की संरचना सामग्री है। कविता, कहानी, नाटक, उपन्यास आदि काव्यरूप इसी भाषा की संरचनाओं में पलते हैं। यही रचनात्मक भाषा और काव्यभाषा है और अपने द्वारा रचित साहित्य रूप की भाषिक संरचना भी।

6.1.4 भाषा और संवेदना

सामान्य भाषा के विशेष प्रयोग में 'विशेष' का क्या अर्थ है? यह विशेषता क्या है, कहाँ से आई और इसकी क्या जरूरत है? इन प्रश्नों का सम्बन्ध भाषा के आविष्कार और मनुष्य की बुनियादी मानसिक बनावट तक जाता है। कहा गया है कि मनुष्य का मन भी भाषा की संरचना है।

पहले कहा गया कि मनुष्य एक सामाजिक जन्तु है। फिर इसमें जोड़ा गया कि मनुष्य एक सोचने वाला जन्तु है। नवीनतम इज़ाफा यह है कि मनुष्य एक भाषिक जन्तु है। तीनों बातें एक दूसरे से जुड़ी हैं। मनुष्य एक भाषिक (बोलने वाला) जन्तु है इसलिये वह एक सोचने वाला जन्तु है। इसलिये वह एक सामाजिक जन्तु है। इस क्रम को सीधा करके यूँ कहा जा सकता है कि मनुष्य के पास भाषा है इसलिये वह सोच सकता है इसलिये यह सामाजिक होता है। भाषा के द्वारा मनुष्य सिर्फ सोचता ही नहीं, महसूस भी करता है और अपने अहसास को ठीक वैसा ही कहना भी चाहता है, जैसा कि वह महसूस करता है। भाव और अनुभव निश्चित निर्धारित भाषा के सहारे कही जा सकने वाली वस्तु नहीं है। उनका आवेग, गहराई, व्यापकता–सब–कहने की विधि से निर्धारित किया जाता है। भाव के स्वरूप को निर्धारित करने की कोशिश में भाषा स्वयं निर्धारित अर्थ के पार चली जाती है, तरल और अनेकमुखी हो जाती है और ऐसी भाषा से मिलने वाला अर्थ भी अन्ततः निर्धारित नहीं होता। हम अपने दैनिक जीवन के व्यवहार में भी ऐसी भाषा बार–बार प्रयोग में लाते हैं। सूचना–संकेत की रूढ़ भाषा के उदाहरण की तरह आपने पढ़ा, 'लाल बत्ती हो गयी' और 'आसमान बुरी तरह से घिर गया है।' लेकिन इन्हीं सूचनाओं को आप यदि इस संरचना में 'जब देखो तब, घिरा ही रहता है आसमान। हर चौराहे पर लाल बत्ती मेरी प्रतीक्षा में रहती है' तो यहाँ घिरा हुआ आसमान बरसात के मौसम की और लाल बत्ती रुक जाने की सूचना नहीं होंगे; निराशा, उदासी, पराजित मनोभाव को अभिव्यक्त करेंगे। कल्पना और निरीक्षण के योग से सूचना–संकेत की भाषा भी भावात्मक व्यंजना की भाषा में बदल गयी है। साहित्य की भाषा का बुनियादी स्वभाव यही है। यहाँ दर्ज करने लायक एक विशेष बात यह है कि वह केवल भाव की भाषा नहीं है, उसमें विचार भी किया जा सकता है। कहने का कौशल भाषा में एक चमक और चमत्कार उत्पन्न कर देता है। विनोद, परिहास, चुपकी, वक्रता, व्यंजना, सूक्तिपरकता आदि अनेक गुण उसे रोचक और रंजक बनाते हैं। इस भाषा में जो कुछ लिखा जाता है, जरूरी नहीं कि वह केवल कविता, कहानी, नाटक या उपन्यास जैसा कोई साहित्य के नाम से परिचित काव्यरूप हो। पिछले दिनों अंग्रेजी में प्रकाशित कुछ पुस्तकों का उदाहरण दिया जा सकता है। विश्वप्रसिद्ध अर्थशास्त्री और नोबेल पुरस्कार विजेता अमर्त्य सेन की 'द आर्ग्युमेनोपिव इंडियन', पवन के, वर्मा की 'द ग्रेट इंडियन मिडिल क्लास' इत्यादि ऐसी ही पुस्तकें हैं जो शास्त्र और सिद्धान्त से सम्बन्धित हैं लेकिन शास्त्र और सिद्धान्त की भाषा में लिखित नहीं हैं। उनकी

भाषा का स्वभाव साहित्यिक भाषा के अधिक निकट है। उनमें विचार और चिन्तन भाव और मनोरंजन से सम्बद्ध हो गया। उनका पाठक वर्ग विस्तृत हुआ है और वे सामान्य पाठक वर्ग में भी उतनी ही लोकप्रिय हुई हैं।

आदमी के पास एक बाहर की दुनिया है और एक भीतर की दुनिया है। बाहर की दुनिया में ठोस और साकार वस्तुएँ हैं। उन्हें रूप कहा जाता है। मनुष्य ने इन रूपों का नाम देकर उन्हें उनके ठोस, वास्तविक, उपस्थित आकार से अलग कर लिया है। उसके मन में रूप का एक मानसिक आकार अथवा चित्र इस नाम से जुड़ जाता है। जैसे पेड़ नाम की वस्तु। भाषा में हमारा काम वस्तु के बदले नाम से चल जाता है। इसे अमूर्तन कहते हैं। भाषा मूर्त वस्तु को अमूर्त नाम में बदलती है।

भीतर की दुनिया में भावनाएँ और विचार हैं। उनका कोई ठोस आकार नहीं लेकिन आदमी अपने अनुभव से जानता है कि वे मौजूद है। भाषा के ज़रिये एक दूसरे को बताता भी है कि वह क्या सोचता और महसूस करता है। आदमी ने भावनाओं को भी नाम देकर पहचान के योग्य बना लिया है।

भाषा में उसने बाहर की दुनिया और भीतर की दुनिया की हर चीज का, हर गति का, हर क्रिया का नामकरण कर लिया है। शायद इसीलिये भाषा–दर्शन में दुनिया को नामरूपात्मक जगत कहते हैं। दुनिया रूपजगत है, सिजमें ठोस रूपकार वाली वस्तुएँ रहती हैं। मनुष्य भी उनमें शामिल है। दुनिया नामजगत भी है। क्योंकि भाषा में दुनिया की हर चीज़ किसी नाम से पहचानी जाती है–वे वस्तुएँ भी जिनका रूप भी है और नाम भी और वे भी जिनका कोई रूप नहीं केवल नाम है और जिनकी सत्ता केवल भाषा में है अर्थात भावनाएँ। नामरूपात्मक जगत का अर्थ है वह दुनिया जिसमें रूप या वस्तु नाम में बदल गयी है और अरूप या भाव को भी एक नाम के द्वारा रूप में बदल दिया गया है, इस तरह जहाँ नाम ही रूप का स्थानापन्न हो गया है। भाषा की इस क्षमता के द्वारा मनुष्य बाहर की दुनिया को अन्तरंग बनाता है और भीतर की दुनिया को नाम देकर बहिरंग और वास्तविक करता है।

सभ्यता के विकास के साथ–साथ मनुष्य बाहर की दुनिया से, वस्तुओं से अधिक से अधिक जुड़ता चला गया। उसकी भाषा बाहर की दुनिया के अर्थों के पीछे दौड़ने में अधिक से अधिक व्यस्त होती चली गयी। इस दौड़ में वह भीतर की दुनिया के भावों की अभिव्यक्ति में उसी अनुपात में असमर्थ भी होती चली गयी। लेकिन आदमी के भीतर की दुनिया अभिव्यक्ति माँगती है और उसके दैनिक व्यवहार में तरह–तरह से बोलती भी रहती है। भाषा की साहित्यिक विशेषता का यही मूल उद्‌गम है।

6.1.5 गद्य और पद्य

सामान्यतः हम पद्य को कविता का पर्यायवाची मानते हैं लेकिन पद्य का अर्थ छन्दबद्ध भाषा है और जरूरी नहीं कि छन्दबद्ध भाषा में लिखित सब कुछ कविता ही हो। शताब्दियों तक भारत में गणित, आयुर्वेद, ज्योतिष, दर्शन, कृषि, लोकव्यवहार तक हर प्रकार का ज्ञान पद्य अर्थात छन्दबद्ध भाषा में दर्ज किया जाता रहा था, और कविता भी। अब आधुनिक काल में गद्य के प्राधान्य के बाद कहा जा सकता है कि इतिहास, राजनीति, समाजशास्त्र, अर्थशास्त्रा आदि हर प्रकार का ज्ञान गद्य अर्थात छन्दमुक्त भाषा में दर्ज किया जाता है, और कविता भी।

भारतीय काव्यशास्त्रीय परम्परा में पद्य और गद्य दोनों को काव्य के दो प्रकार माना जाता रहा है। भाषा के उपरोक्त विवेचन के बाद समझ में आ सकता है कि ऐसा क्यों रहा होगा।

छन्दमुक्त/छन्दहीन भाषा को गद्य कहते हैं। साहित्य के इतिहास में आधुनिक काल को गद्य की नयी विधाओं के विधिवत आरंभ का काल माना जाता है लेकिन परम्परा में गद्य की उपस्थिति भी शताब्दियों पुरानी है क्योंकि हिन्दी की परम्परा में हम सहज ही संस्कृत को शामिल करके चलते हैं। इस आलेख में हम कहानी की भाषिक संरचना के बारे में बात करने जा रहे हैं और कहानी के पिछला रूप आख्यान, उपाख्यान, कथा आदि परम्परा से भी प्रमुखतः गद्यरूप ही रहे हैं लेकिन और खण्डकाव्य, महाकाव्य आदि प्रबन्धरूपों में कविता में भी कहानी कही जाती रही है। ऐसा प्रतीत होता है कि परम्परा में भाषा के सृजनात्मक व्यवहार का नाम काव्य था, वह चाहे छन्दमुक्त हो या छन्दबद्ध, गद्य हो या पद्य।

सदियों से चली आती सूक्ति है 'गद्य कवीनाम निकषं वदन्ति'। इसे पढ़ा तो यूँ ही जाता है कि गद्य कवियों का निकष/कसौटी है लेकिन इस में भुला दिया जाता है कि जिस परम्परा से यह सूक्ति हमको प्राप्त हुई है उसमें गद्य भी काव्य है और गद्यकार भी कवि। काव्य और कविता अर्थात कवि की भाववाचक संज्ञा। इन दोनों बातों को ध्यान में रखते हुए पढ़ा जाए तो इस सूक्ति का एक अर्थ यह भी निकलेगा कि कवियों का गद्य निकष है। इसका सीधा अभिप्राय यही समझा जा सकता है कि पद्य ज्ञान और शास्त्र के अलावा काव्य का माध्यम भी था लेकिन रोज़मर्रा के जीवन की गैर–सृजनात्मक जरूरतों की भाषा नहीं। वह काम गद्यभाषा करती थी–सूचनात्मक, रूखी और रसहीन। उसमें रचना करना सहज नहीं। उसको भी रचना का माध्यम बना कर जो अपने कवित्व को सिद्ध कर देता है, उसकी सृजनक्षमता मानो गद्य की कसौटी पर कसी जाकर प्रमाणित हो चुकती है। कवि/रचनाकार अपने लेखन से गद्य को भी सर्जनात्मक बनाने में समर्थ होता है। उस कवि का गद्य भाषा के सौन्दर्य की कसौटी हुआ करता है।

तब से अब तक बहुत कुछ बदल चुका है। कविता भी अब अधिकतर गद्य में ही लिखी जाती है लेकिन कवि और गद्यकार एक दूसरे से अलग हो चुके हैं और गद्य की सर्जनात्मक संभावनाओं का अनेकमुखी विकास किया जा चुका है।

6.2 कहानी का गद्य

शीर्षक का एक संकेत यह है कि कहानी के गद्य के अलावा कहानी का पद्य भी होता है, जैसा कि वह प्रबन्धकाव्य में था; आज भी अंग्रेजी में विक्रम सेन ने अपने प्रथम उपन्यास 'द गोल्डेन गेट' की रचना पद्य में की है; और दूसरा यह कि गद्य कहानी के अलावा अन्य साहित्यरूपों का भी हुआ करता है। आधुनिक काल में मुद्रण की शुरुआत के पहले तक कहानी वाचिक परम्परा में किस्सागोई और कथावाचन की कलाओं के गद्य–रूप में मौजूद थी। उसकी भाषिक संरचना भी श्रोता के ध्यान को वाचन–श्रवण में बाँधे रखने की ज़रूरतों के साथ जुड़ी थी। वह कौतूहल, घटनाबहुलता व शब्दाडम्बर से परिपूर्ण आवेगप्रवण भाषा थी। छपने वाली आरंभिक कहानियाँ इसी परम्परा से ली गयी थीं और उनकी भाषिक संरचना पर इस परम्परा की छाप मौजूद है। प्रबन्धकाव्य को कथा का बन्ध ही प्रबन्ध बनाता है अतः उसे भी कहानी के परम्परागत रूप में शामिल किया जा सकता है।

छापेखाने और प्रकाशन–व्यवसाय की शुरुआत वाचिक परम्परा को परम्परा में बदला तो एक दूसरे में गुँथी हुई कविता कहानी एक दूसरे से खींच कर अलग की गयी। कविता धीरे–धीरे प्रबन्ध–मुक्त होती गयी। छायावाद के बाद की कविता में प्रबन्धात्मकता विरल, लगभग अनुपस्थित है। लम्बी कविताएँ लिखी गयीं जरूर लेकिन उनमें जो एक घटना–सूत्र का आभास सा होता है उसे हम अधिक से अधिक वृत्तान्त कह सकते हैं.. .पूरा कथाक्रम नहीं। कहानी ने भी दैनिक जीवन के यथार्थ की भाषा बनने के क्रम में खुद को कविता से अलग किया।

गद्य की सूत्रबद्धता उसके रूपों को मूलतः निबन्ध बनाती है। निबन्धन सूत्रबद्धता का पर्याय है। निबन्ध में विचारों की कड़ियाँ एक सरल शृंखला में आबद्ध हो कर प्रस्तावना की सिद्धि तक ले जाई जाती हैं। कहानी के गद्य का निबन्धन अलग तर्क से होता है। वह किसी विचार शृंखला के विकास के तर्क से नहीं, अनुभव की जीवन्त रचना के तर्क से गढ़ा जाता है।

कहानी के प्रथम पृष्ठ से लेकर अन्तिम पृष्ठ तक के बीच हमें एक संसार बसा मिलता है। कथानक के हिसाब चुना गया एक घटनास्थल–गली, मुहल्ला, कोई घर, पार्क, सड़क, गॉव, शहर, देस, परदेस, बस्ती या जंगल, नदी का किनारा या बीच धारा, समुद्र, पहाड़, या यूँ कहें कि न केवल धरती पर ही बल्कि सूझ में समाने वाली कोई भी जगह क्योंकि फैन्टेसी के रूप में भी कहानी रची जा सकती है और कल्पना से भी कोई जगह गढ़ी जा सकती है, उस घटनास्थल में बसे हुए लोग, उनके जीवन में से गुजरता समय–सामान्यतः कहानी का बीज दैनिकचर्या से किसी व्यक्तिक्रम में हुआ करता है। आरंभ से अन्त के बीच ऐसा कुछ घटित होता है जो आरंभिक स्थिति–परिस्थिति हो या मनःस्थिति–को बदल कर कुछ और कर देता है। कहानी पढ़ने का मतलब उस संसार में, उसमें बसे हुए लोगों की ज़िन्दगी में साझेदारी करना है। उनके रिश्तों को, तनावों और को, उनकी खुशियों और दुखों को, उनकी उपलब्धियों और निराशाओं को उनकी प्रतिबद्धता और ईर्ष्याओं को उनके समूचे चित्रित जीवन को अपने संवेदन–तंत्र पर महसूस करना है और इन सबके सार में किसी न किसी तरह अपने समय और समाज के साथ कोई न कोई रिश्ता खोज लेना है।

इस संसार को गढ़ने वाले घटकों या अंगों को आपने कथानक, पात्र और चरित्र–चित्रण, देशकाल और वातावरण और उद्‌देश्य के नाम से जाना है। भाषा–शैली भी सिर्फ़ एक घटक की तरह गिनाई गई होगी लेकिन ये वस्तुतः ये सारे घटक भाषा से भिन्न कोई वस्तु नहीं, वे भाषा के द्वारा, भाषा में रचे गये हैं। कहानी की संरचना का अर्थ इन घटकों के संयोजन है और भाषा इस संयोजन की कर्त्ता है। पूरा संसार भाषा में ही निवास करता है और लेखक द्वारा भाषा में ही जीवित किया जाता है। संप्रेषण भाषिक सृजन का अनिवार्य पक्ष है। उसे एक संसार के रूप में जीवित होने के लिये एक ओर उसकी क्षमता का सहारा चाहिए अन्यथा पृष्ठ पर छपे हुए अक्षर केवल कुछ निशान हुआ करते हैं, निर्जीव और अर्थहीन।

कथानक को आम पात्र पर परिस्थिति का घात–परिघात मान सकते हैं। कभी परिस्थिति पात्र को दबाती और गढ़ती है, तो कहीं पात्र परिस्थिति को गढ़ते हैं। कहानी में आपको घेरने वाली एक मनःस्थिति होती है जिसे आप कहानी का मूड कह सकते हैं और जिसका अनुभव आप कहानी के वातावरण की तरह करते हैं। इन घटकों को जब आप कहानी के छः तत्त्वों की तरह पढ़ते हैं तो कहानी छिन्न–भिन्न होकर टुकड़ों में बिखर जाती है। यह कहानी के साथ अंगविच्छेदन या अस्तित्वःभंग जैसा राजकीय सलूक है। लेकिन जब

आप इसे एक संरचना की तरह देखते और उनके संयोजन को समझने की कोशिश करते हैं तो कहानी की संवेदना का संश्लिष्ट स्वरूप प्रकट होता है।

इस संश्लिष्टता का पहला स्तर कहानी के प्रथम पृष्ठ से अन्तिम पृष्ठ के बीच बसे संसार में चित्रित समय है। वह कहानी के पात्रों के जीवन में तो बीत रहा है लेकिन अन्यथा यहीं स्थिर और विजड़ित है, जैसे किसी चित्र में अंकित दृश्य विजड़ित होता है। दूसरा स्तर कथाकार के अपने समय की संवेदना का है जो कहानी के संसार में कहीं अदृश्य होकर समाया हुआ है, कहीं किसी कहानी में वह स्पष्टतः प्रस्तुत या निरूपित होता है, तो कही कार्यव्यापार में ओझल भी होता है। भाषिक संरचना के बारीक विश्लेषण से प्रायः उसको अनावृत्त किया जा सकता है। कहानी भाषा में संरचित है और भाषा सामाजिक उत्तराधिकार का विषय है अतः कहानी की भाषिक संरचना में जीवन की सामाजिक सांस्कृतिक संरचना की कोई झलक प्रच्छन्न होती है।

उदाहरण के लिये प्रसिद्ध कहानी 'उसने कहा था' के प्रचलित पाठ को देखें। उसे अब तक प्रेम में आत्म बलिदान की कहानी की तरह पढ़ने की रीति चली आती रही है। कहानी के विस्तार में युद्ध एक बड़ी जगह घेरता है लेकिन ऐसे में ऐसा प्रतीत हो सकता है मानो युद्ध को नायक लहनासिंह के सामने प्रेम में प्राण दे देने के लिये एक बहाने की तरह जुटाया गया है। लेकिन इसके विपरीत अगर युद्ध को कथानक का एक संश्लिष्ट घटक मानकर पढ़ें तो कहानी के अर्थ और अनुभव में एक जटिलता का समावेश होता है। तब आप इस बात के लिये सजग होकर कहानी को पढ़ते हैं कि कहानी में चित्रित युद्ध प्रथम विश्वयुद्ध है। यही कहानी का रचनाकाल भी है। इतने बड़े पैमाने पर हिंसा, रक्तपात और मृत्यु तब तक के इतिहास में विश्व ने पहली बार देखी थी। ऐसा समय हमेशा मनुष्य के विवेक के समक्ष जीवन के अर्थ, मूल्य और महत्त्व को लेकर उद्वेलन खड़ा कर देता है। कथानक के स्तर पर 'उसने कहा था' युद्ध के दिनों में विगत प्रेम की सोयी और खोयी हुई स्मृति के जागने और मिलने की कहानी है।

'उसने कहा था' का आरंभ अमृतसर के बाज़ार में जीवन के कोलाहल की ध्वनियों से होता है जहाँ बुढ़िया को भी "हट जा जीणे जोगिये; बच जा लम्बी वालिये" आदि शब्दावली से जीवन की शुभ कामनाएँ दी जा रही हैं। इस कोलाहल के बीच आठ साल की एक लड़की और बारह साल के एक लड़के के चेहरे उठकर क्षण भर को फोकस में आते हैं, एक अपरिभाषित से लगाव में बँधते हैं और अलग हो जाते हैं। इस संक्षिप्त संकेत के बाद की पूरी कहानी लड़ाई के मैदान में घटती है जहाँ लहनासिंह की स्मृति–शृंखला चित्रित है जो युद्ध के मैदान में मरते हुए व्यक्ति को कहानी के शुरू के बाज़ार के उस बारह साल के बालक के रूप मैं पहचनवाती है जिसके हृदय में आकर्षण का पहला अंकुर फूटा था, जिसने उस आठ साल की लड़की, अब सूबेदारनी, के अनुरोध पर लड़ाई के मैदान में उसके पति–पुत्र की देखभाल और रक्षा की है, जिसकी आँखों में बुलेल के खड्ड के किनारे अपने घर में मरने का सपना था, वहाँ उसके आँगन में अपने हाथो लगाया हुआ आम का बूटा था जिसकी उम्र उसके बेटे के बराबर थी और जो इस बार के हाड़ में फलने वाला था। कहानी का अन्त अखबार की इस सूचना से होता है "–मैदान में घावों से मराः नं. 77 सिक्ख राइफल्स जमादार लहनासिंह।" अखबार में मृत्यु की जो संक्षिप्त सूचना हम खबर की तरह पढ़ते हैं, खासतौर से युद्धकाल की मरणसूचियों में जो महज एक नम्बर और एक नाम में बदल कर रह जाती हैं, दरअसल उसके भीतर खुद हमारे जैसा एक जीता जागता आदमी और उसके सपनों का अप्रत्याशित अन्त समाया रहता है। इक्कीसवीं शताब्दी के पाठक के सामने 1916 में रचित इस कहानी का एक व्यक्तिगत वीरता और मृत्यु के वरण का आत्महन्ता शौर्य अन्तिम अध्याय भी हो सकता है क्योंकि

आधुनिक युद्ध की विभीषिका में "यह भी कोई लड़ाई है...गनीम कहीं दिखता नहीं,—घण्टे दो घण्टे में कान के परदे फाड़ने वाले धमाके के साथ सारी खन्दक हिल जाती है और सौ सौ गज धरती उछल पड़ती है...इस गैबी गोले से बचे तो कोई लड़े...।" कहानी के कथ्य का एक घटक कथावस्तु है। अर्थात कहानी की रूपरेखा या ढाँचा। बाकी सारे जो तत्त्व या अंग या घटक आप को गिनाए जाते हैं, अर्थात पात्रों को चरित्र—चित्रण या देशकाल वातावरण या संवाद और भाषाशैली वह इसी ढाँचे को हाड़—मॉस, रूप रंग देकर अनुभूति का जीवित विषय बनाते हैं। संरचना का यह सारा संरजाम किसी विचार के इर्द गिर्द सजाया जाता है। वह विचार ही घटकों के संयोजन की केन्द्रीय धुरी है और चित्रित संसार को एक परिप्रेक्ष्य देता है। कभी यह विचार आपको साफ—साफ प्रक्रम दिखाई भी देता है और कहानी को उपदेशात्मक बनाता है। यही विचार ही कहानी की विषयवस्तु है जिसे आपने कहानी के घटकों अंगों या तत्वों की गिनती में कहानी के प्रयोजन या उद्देश्य के नाम से जाना है। कथावस्तु और विषयवस्तु में रास्ते और गन्तव्य का रिश्ता है। लेकिन कहानी का कौशल इस बात में माना जाता है कि वह मूल विचार कथानक की परतों में इस तरह लपेटा और छिपाया गया हो कि अनुभव के भीतर पूरा घुल कर कहानी की अपनी भीतरी तह बन जाए। तब कथावस्तु के साथ जुड़े प्रक्रम या प्रत्यक्ष प्रयोजन के अलावा कोई और अप्रत्यक्ष प्रयोजन अपनी उपस्थिति का परिचय देने लगता है। इस कथ्य को हम कहानी की अन्तर्वस्तु कहते हैं। 'उसने कहा था' का प्रक्रप और प्रत्यक्ष प्रयोजन भले ही आपको जिज्ञासा और कौतुहल जगाने वाली और अन्त तक उस कौतूहल का निर्वाह करने वाली एक प्रेम कहानी सुनाना प्रतीत हो जो अन्त में एक रहस्य की तरह बचपन के प्रेम का उद्घाटन करती है लेकिन उसकी अन्तर्वस्तु युद्ध से असहमति और विरोध है। इस अन्तर्वस्तु तक आप कहानी की भाषिक संरचना के गहन विश्लेषण से ही पहुँचते हैं। छोटे—छोटे संकेत सूत्र पकड़कर उन्हें एक दूसरे में बुनकर आप उन निष्कर्षों तक पहुँचते हैं जिन्हें आप अन्तर्वस्तु का नाम दे सकें। 'उसने कहा था' से ही उदाहरण लें तो सबसे महत्त्वपूर्ण संकेत कहानी का पूर्वोद्धत अन्तिम वाक्य और उसमें दिया गया सूची और सिपाही का नम्बर और नाम है, दूसरा संकेत लहनासिंह की स्मृति—शृंखला है जिसमें लहनासिंह को याद आता है कि पच्चीस साल पहले उस आठ बरस की कन्या के मुख से सगाई की बात सुन कर उसे दुख और क्रोध हुआ था। वह खुद से पूछता है, क्यों हुआ था? उसके बाद पच्चीस वर्ष के अन्तराल की सूचना देते हुए यह भी दर्ज है कि उस आठ वर्ष की कन्या का ध्यान ही न रहा। न मालूम वह कभी मिली भी थी या नहीं। ये संकेत लहनासिंह के मन में सोयी हुई एक अस्फुट कोमल भावना का परिचय तो देते हैं लेकिन यह भी स्पष्ट कर देते हैं कि कहानी का प्रमुख संवेद्य प्रेम नहीं है। यह भी सवाल पूछा जा सकता है कि इस कोमल भावना का प्रेम कहा भी जा सकता है या नहीं। लाम पर जाते हुए सूबेदार उसे साथ चलने के लिये अपने गाँव होते हुए जाने का निमंत्रण देता है तो कहानी साथ में यह सूचना भी देती है कि सूबेदार उसे बहुत चाहता था यानी सूबेदारनी के अनुरोध के अलावा भी यह गहन मित्रता लहनासिंह के आचरण के लिये एक कारण के रूप में मौजूद है। सूबेदार और बोधा को लहनासिंह जबर्दस्ती घायलों की गाड़ी में चढ़ाता है तो यह भी पता चलता है कि गाड़ी में वही आखिरी जगह थी। लहनासिंह को पसलियों में गहरा घाव लग चुका है, उसे अपनी आसन्न मृत्यु का अन्दाजा है। इसके पहले भी वह खाली बैठे इन्तज़ार करने की ऊब, धावा मारने की उतावली और सिर्फ़ आठ सिपाहियों के बल पर अपनी खन्दक की रक्षा में वह मौत से खेलने के अपने शौर्य और बेताबी का परिचय दे चुका है। इसी स्मृति—शृंखला में वह अपने आँगन के आम, अपने भाई कीरतसिंह और उसके भतीजे यानी अपने बेटे को भी याद करता है और आषाढ़ में आम के फलने पर चाचा—भतीजे को बैठ कर खूब आम खाने का निमंत्रण देता है। कहानी में वह इसके पहले भी वह बुलेल

की खड्ड के किनारे भाई कीरतसिंह की गोद में सिर रखकर अपने आँगन के आम की छाया के नीचे मरने की इच्छा जाहिर कर चुका है। गाड़ी में चढ़ते हुए सूबेदार को वह सूबेदारनी के लिये जो सन्देश देता है वह मृत्यु के मुख में जा खड़े हुए व्यक्ति का सन्देश है। यह मान लेने की कोई वजह नहीं कि उसने स्वेच्छा से मृत्यु का वरण कर लिया है लेकिन प्रेम में आत्म बलिदान की कहानी की तरह पाठ इसके का चलन शुरू हो जाने के कारण इन संकेतों को हम भरती के विवरण मानकर अनदेखा कर जाते हैं लेकिन इन्हीं संकेतों के कारण कहानी के एक वैकल्पिक अर्थ की तलाश शुरू होती है और एक व्यक्ति के प्रेम और शौर्य की गाथा की बजाय उसे युद्ध और मानवीय नियति की गाथा बना देती है। आधुनिक काल में गद्य–रचना का माध्यम बना और कहानी वह साहित्यरूप जिसमें गद्य अपने सृजनात्मक सौन्दर्य का सर्वाधिक सघन परिचय देने में समर्थ होता है। जीवन की समग्रता को, उसके चतुर्दिक आयामों में पकड़ने वाला कथारूप उपन्यास है लेकिन विषय के विस्तार और आकार की विशालता के कारण उसके लिये भाषिक संरचना में आद्योपान्त भावात्मक सघनता और सर्जनात्मक तनाव को थामे रखना संभव नहीं होता जैसा कि वह कहानी में हो पाता है।

6.3 कहानी की संवेदनात्मक संरचना और भाषा की भूमिका

आधुनिक काल के पहले तक वाचिक परम्परा के अंग की तरह काव्यकथाएँ प्रबन्ध रचनाओं के रूप में मौजूद थीं। आधुनिक कहानी के आरंभ के बाद प्रबन्ध रचना का काव्यतत्त्व और कथातत्त्व एक दूसरे से छीलकर अलग किया गया। प्रबन्धकाव्य और कहानी–उपन्यास की या प्रकारान्तर से मध्यकालीन और आधुनिक बोध की तुलना करते हुए अनेक विचारणीय मुद्दे उठाए गये हैं, जैसे आदर्श और अध्यात्म के आस्थापरक सत्य के बदले प्रामाणिकता और यथार्थ का आग्रह, तर्कसंगति और वैज्ञानिक दृष्टिकोण की ओर रुझान, सामन्तवादी संवेदना की बजाय आधुनिक जनतांत्रिक चेतना आदि। एक विचारणीय आयाम भाषिक संरचना का भी है अर्थात कहानी जब कविता में सुनाई जाती थी तब उसके कथा–तत्त्व पर कविता का क्या असर हुआ करता था और आज एक दूसरे से अलग हो जाने के बाद गद्य और कविता के उस गुम्फित मूल स्वभाव का क्या रूप बना। मानो इसी के उत्तर में कहानी की संवेदना को दो हिस्सों में बाँट दिया गया है। एक यथार्थवादी कहानी और दूसरी काव्यात्मक संवेदना की कहानी। इसी विभाजन का एक नामान्तर यथार्थवादी और कलावादी कहानियों का है, एक और नामान्तर सामाजिक और व्यक्तिवादी कहानियों का भी है।

लेकिन ये सभी नामकरण भ्रामक ही कहे जा सकते हैं। इनसे यह आभास उत्पन्न होता है कि यथार्थवादी धारा कलाविहीन है और तथाकथित कलावादी धारा का यथार्थ से कोई सम्बन्ध नहीं। वास्तविकता यह है कि 'व्यक्ति' यथार्थ को व्यंजित करने वाली और संवेदना को तादात्म्य का आधार देने वाली 'इकाई' है, कहीं शून्य में विचरता कोई अस्तित्व नहीं। उसके माध्यम से कहानी अपने कथ्य का संवेद्य अनुभव में बदलती है। यथार्थवादी साहित्य का एक आन्दोलन है, जीवन को देखने और अभिव्यक्ति करने की एक विधि, लेकिन यथार्थ का यथार्थवादी होना कोई ज़रूरी नहीं। यथार्थ एक आन्दोलन से कहीं ज़्यादा बड़ी चीज़ है।

यथार्थ के अनेक धरातल हैं। उसका एक पक्ष यथातथ्य और सतह तक सीमित इतिवृत्त है और दूसरा गहराई तक जाने वाला अन्वेषण और अनुसंधान। यथार्थ के इन पक्षों को विस्तार और गहराई के नाम भी दिये गये हैं। परिवेश और परिस्थितियाँ यथातथ्य संवेदना का पहला स्तर है जो स्थूल घटनाओं तक भी सीमित रह जा सकता है। इसे

हम यथार्थवादी कहानी के नाम से जानते हैं। दूसरे पक्ष अर्थात गहराई का सम्बन्ध अन्तर्मन् से है। वह भी यथार्थ का ही एक धरातल है जबकि उसे यथार्थवादी के विपरीत कलावादी कहा जाता रहा है। लेकिन उसकी कला का उद्देश्य यथार्थ के ही एक भिन्न धरातल की अभिव्यक्ति है यानी दृष्टि को घटनाओं और परिस्थितियों को भेदते हुए उस मूल अनुभूति तक ले जाना जो जीवन की सार्थकता का अन्वेषण और सत्यापन करती है। इस संवेदना के लिये अभिव्यक्ति विशेष रूप से महत्त्वपूर्ण होती है क्योंकि उसका कथ्य ऐसी कोई बनी बनाई चीज़ नहीं जिसको सब एक ही तरह से देखते हैं और जिसकी ओर संकेत करने मात्र से काम चल जाता है, जैसा कि यथातथ्य अथवा स्थूल घटना और परिस्थिति का चित्रण करने वाली कहानी में होता है। बल्कि उसका कथ्य भाषा में निरूपण के द्वारा ही साकार किया जाता है। अतः उसके अस्तित्व का पूरा दारोमदार शब्दों पर होता है। यह प्रक्रिया शब्दों में एक काव्यात्मक तनाव और नाटकीयता का सृजन करके अपनी अभिव्यक्ति को रूप देती है।

सतह का संसार हमारा देखा–सुना परिचित संसार है, गहराई के संसार का हम अनुसंधान और आविष्कार करते हैं। सतह–संवेदना की अभिव्यक्ति को यह अहसास देती है कि ऐसा तो हम भी सोचते थे, मानो हमारे ही मन की बात किसी ने ऐसे शब्दों में कह दी है जैसा हम खुद नहीं कह पाते। गहराई की संवेदना की कहानी को इस पहचान से विस्मित करती है कि ऐसा तो हमने कभी सोचा ही नहीं। प्रभावशाली कहानियाँ कई बार हमें खुद अपने ही मन का ऐसा परिचय देती हैं जो हमारे लिये अभी तक अज्ञात था।

कुछ रचनाकार कविता और कहानी में समान रूप से सक्रिय हैं। कवि भी होने के कारण उनकी कहानियों को प्रायः सुविधापूर्वक काव्यात्मक संवेदना की कहानी कह दिया जाता है। जयशंकर प्रसाद, पन्त और निराला ने शुरू करके अज्ञेय और मुक्तिबोध, रघुवीर सहाय, श्रीकान्त शर्मा, सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, कुअँरनारायण, रमेश चन्द्र शाह, उदय प्रकाश, विष्णुनागर, प्रयाग शुक्ल आदि तक सूची खासी लम्बी है। इनके अलावा निर्मल वर्मा, रामकुमार, ब्रजेश्वर मदान, आनन्द हर्षुल, प्रियम्वद, शशांक आदि ऐसे भी अनेक नाम हैं जो स्वयं कवि तो नहीं हैं लेकिन उनकी कहानियों में कुछ ऐसा है जो उन्हें काव्यात्मक बनाता है।

प्रस्तावना में आपने भाषा की दो कार्यनीतियों के विषय में पढ़ा है–एक निश्चित अर्थों वाली रूढ़ भाषा या अभिधा और दूसरी तरल अर्थों वाली भाषा या व्यंजना। सतह संवेदना की कहानी प्रमुख तौर से निश्चित अर्थों वाली भाषा में अभिव्यक्त होती है। गहराई की संवेदनावली कहानी को तरल अर्थों वाली व्यंजना की भाषा का सहारा लेना ही पड़ता है मानसिक मन्थन, अन्तर्द्वन्द्व, आवेग, आकुलता–पूरा आन्तरिक संसार इसके बिना न तो साकार होता है, न बहिर्गत। इसके अभाव में वह वस्तुगत, मूर्त और प्रामाणिक नहीं बन सकता।

काव्यात्मकता और नाटकीयता–सर्जनात्मक भाषा के ये दो बुनियादी लक्षण हैं, वह चाहे गद्य हो या पद्य। प्रायः यथार्थवादी कथातत्व के साथ नाटकीयता और गहराई की संवेदना के साथ काव्यात्मकता का साहचर्य होता है। दोनों में से किसी एक या कमोबेश दोनों के समावेश से गद्य सर्जनात्मक भाषा में चलता है। बहिरंग यथार्थ जितना ही बीहड़ और भीमकाय होता है, उसे यथावत दैत्याकार पकड़ने की लेखक की इच्छा और संकल्प जितना ही प्रतिबद्ध होता है, तरल अर्थों वाली व्यंजनात्मक भाषा बहिरंग यथार्थ के धरातल पर भी उतना ही अनिवार्य होती जाती है। लेकिन यह कोई आत्यंतिक विभाजन नहीं है। दोनों ही भाषिक पद्धतियाँ एक दूसरे में आवागमन करती ही रहती हैं। उदय प्रकाश की

कहानियाँ इसका प्रमाण हैं। इसके अलावा, गहराई में जाए बिना सतह पर रहना तो संभव है लेकिन सतह को छुए बिना गहराई में जाया नहीं जा सकता। सतह से ही इस बात का निर्णय सम्भव है कि गहराई कितनी गहराई में है। गहराई के बिना सतह उथली रह जाती है, सतह के बिना गहराई निराधार। गहराई केवल अन्तर्मन् की नहीं, स्थितियों की भी होती है और परतों पीछे परतें छिपी हुई हो सकती हैं। यथार्थवादी कहानी का मूल सतह में है और काव्यात्मक संवेदना की कहानी का मूल गहराई में। हिन्दी कहानी में प्रेमचंद युग से ही कहानी की ये दो धाराएँ अविच्छिन्न रूप से विद्यमान चली आ रही हैं। उस युग में प्रेमचंद यथातथ्यात्मक यथार्थवादी कहानी के और जयशंकर प्रसाद काव्यात्मक संवेदना की कहानी से प्रतिनिधि रचनाकार हैं। आज की कहानी में दोनों धाराओं का फासला घटता हुआ दिखाई देता है क्योंकि अब यथार्थ को उसके चतुर्मुख आयामों में पकड़ने का आग्रह बढ़ता जा रहा है।

दोनों प्रकार की कहानियों की भाषिक संरचना का अन्तर स्पष्टतः समझने के लिये कहा जा सकता है कि कहानी का एक प्रकार ऐसा होता है जिसे हम लेखक से पा चुकने के बाद, उसके तत्त्व और अभिप्राय की कोई हानि किये बिना अपने शब्दों में दुबारा सुना सकते हैं लेकिन दूसरे प्रकार की ऐसी भी कहानी होती है जिसके सौन्दर्य को पाने के लिये उसे लेखक के शब्दों में ही पढ़ना आवश्यक होता है। उसका समूचा अस्तित्व उसकी अपनी भाषिक संरचना में है। इस दूसरे प्रकार की कहानी को हम काव्यात्मक संवेदना की कहानी कहते हैं क्योंकि यह कविता का ही स्वभाव है कि उसके शब्द अपने निश्चित अनुक्रम में ही कविता होते हैं। शब्दों की व्यवस्था में हेर फेर करते ही कविता स्वयं नष्ट हो जाती है।

6.4 कहानी की भाषिक विधियाँ

मनुष्य भाषा को एक सिरे पर सामाजिक उत्तराधिकार के रूप में पाता है और दूसरे सिरे पर उसको व्यक्तिगत प्रयत्न से अर्जित और आत्मसात करता है। रचनाकार ऐसा मनुष्य है जिसका व्यक्तिगत भाषिक–अर्जन विशिष्ट और समृद्ध होता है। वह उसे साहित्य के रूप में रच कर स्थायित्व और देशकाल के अतिक्रमण की क्षमता प्रदान करता है। वाचिक परम्परा में स्मृति के पीढ़ी दर पीढ़ी हस्तान्तरण द्वारा और लिखित परम्परा में अंकित और मुद्रित होकर वह संचित और संरक्षित होता है। इस प्रकार संचित और संरक्षित भाषा दोनों ही परम्पराओं में अपने तात्कालिक सन्दर्भों से मुक्त हो कर एक उपरान्त–जीवन पा लेती है और पुनः पुनः और आविष्कार के लिये शेष रह जाती है। इस तरह धीरे धीरे हमारे पास भाषा के रचनात्मक प्रयोगों का एक कोष संचित होता रहता है जो आगामी रचनाकार को पुनः व्यक्तिगत अर्जन द्वारा उपलब्ध होगा। व्यक्तिगत अर्जन और प्रतिदान द्वारा यह कोष निरन्तर समृद्ध होता रहता है। उसकी सामग्री को आधार बनाकर भाषाएँ अपने काव्यशास्त्र और साहित्यालोचन की रचना करती हैं।

ये प्रयोग कथाभाषा की कलात्मक समृद्धि है लेकिन एक उचित व उपयुक्त सन्तुलन की सीमाओं के भीतर ही इसको समृद्धि कहा जा सकता है, कलात्मक अतिरेक समृद्धि नहीं, भार का पर्याय है। कहानी की तुलना ऐसी मालवाही नौका से की गयी है जिस पर अगर उसकी वहन–क्षमता से अधिक भार लदा हो तो वह बीच धार में ही डूब जाती है।

भाषा के व्यक्तिगत अर्जन और अभिव्यक्तिकौशल में कल्पना की सर्जनात्मक क्षमता की सक्रिय भूमिका होती है इसलिये उसकी संभावनाओं का कोई अन्त नहीं है। उसका वैविध्य आरमपार है इसलिये कहानी की भाषिक विधियाँ कहने का अर्थ कहानी में भाषा

के कल्पनामय प्रयोग की विधियाँ कहना है। आधुनिक कहानी के इतिहास में हमारे कथापुरुषों के अब तक के संचित और आगे के नित नूतन सर्जित होते हुए कथा–साहित्य के निरन्तर अवलोकन से हम कहानी में कुछ बहुप्रयुक्त विधियों का संज्ञान ले सकते हैं, इनके सहारे कहानी की भाषिक संरचना को एक हद तक परिभाषित भी कर सकते हैं किन्तु यह ध्यान रखते हुए कि यह कोई अनिवार्य अन्तिम सीमा नहीं है क्योंकि व्यक्तिगत अर्जन का अर्थ केवल अर्जित ज्ञान की पुनरावृत्ति नहीं बल्कि उसे अपनी कल्पना और सर्जना से लैस करके नित नूतन करते चलना है। इसमें नयी विधियों के आविष्कार के अलावा ज्ञात और उपलब्ध विधियों के परस्पर संयोजन, गुम्फन, सम्पादन और विनियोग द्वारा नवीकरण भी शामिल है। अर्थात इस कोष में निरन्तर संवर्द्धन और परिवर्द्धन द्वारा समृद्धि और वैभव की संभावनाएँ असीम हैं। इन भाषिक विधियों का प्रयोग रनचना की ध्वनि से प्रेरित, संचालित, निश्चित व निर्धारित होता है। रचना के विविध अंगों/घटकों/तत्त्वों के संयोजन से निष्पन्न होने वाली संरचना भी उसकी ध्वनि से संचालित होती है। ध्वनि को हम रचना की मंशा कह सकते हैं।

ध्वनि निर्देशात्मक भी हो सकती है अथवा यथार्थवादी भी। रचना जब आदेश/उपदेश/आज्ञा के स्वर में बात करती है, उचित–अनुचित के विवेक का कोई निश्चित निर्धारित चौखा सन्देश के रूप में प्रमाणित व सत्यापित करना चाहती है तो उसकी ध्वनि निर्देशात्मक होती है। इस ध्वनि को हम आदर्शवादी दृष्टिकोण के नाम से जानते हैं। इसके विपरीत यथार्थवादी ध्वनि भौतिक जीवन और जगत जैसा है उसे वैसा ही प्रस्तुत करने के लिये प्रतिबद्ध है।

शिल्पगत ध्वनि वर्णनात्मक भी हो सकती है और लाक्षणिक भी। वर्णनात्मक ध्वनि भाषा में यथातथ्यात्मक निरूपण के उद्देश्य से प्रेरित होती है। वह अभिधा के सहारे चलती है। लाक्षणिक ध्वनि उन सत्यों के निरुपण में यथातथ्यात्मक होना चाहती है जिनको अभिधा के द्वारा प्रस्तुत नहीं किया जा सकता। वस्तुतः इसे निरूपण या प्रस्तुति कहना भी उचित नहीं क्योंकि निरूपण और प्रस्तुति (representation) उन वस्तुओं की होती है जिनका मूर्त और भौतिक अस्तित्व पहले से मौजूद हैं। लाक्षणिक ध्वनि उन यथार्थों को रूपायित/सर्जित करके भौतिक और वस्तुगत अस्तित्व प्रदान करती है जो भौतिक रूप से अमूर्त और निराकार हैं। लाक्षणिक ध्वनि अपनी कहानी के केन्द्र में कोई रूपक रचती है। कहानी में आकर रूपक वह सादृश्यमूलक अलंकार नहीं रह जाता जिससे आपने कविता के सिलसिले में परिचय पाया है बल्कि सघन संक्षेपण द्वारा अर्थ की भावान्विति और बिम्ब बन जाता है।

रचना की ध्वनि का एक स्तर उसके वस्तु तत्त्व से जुड़ा है और दूसरा उसके शिल्प से। रचनात्मक प्रयोग में दोनों एक दूसरे के अनुरूप व समन्वित भी हो सकते हैं और एक दूसरे से भिन्न और विपरीत भी। उदाहरण के लिये प्रेमचंद ने अपने आदर्शवादी दृष्टिकोण के साथ यथार्थवादी शिल्प का समन्वय किया और इसे हिन्दी कहानी ने आदर्शोन्मुख यथार्थवाद का नाम देकर आदर्श और यथार्थ दोनों से ही अलग एक कोटि की विचारधारा की तरह स्थापित कर दिया। आगामी पृष्ठों में कुछ सिद्ध–प्रसिद्ध भाषिक युक्तियों का सोदाहरण विवेचन प्रस्तुत है जिन्हें ऊपर विवेचित सभी ध्वनियाँ अपनी ज़रूरत तथा अपने रचनाकार की रुचि और क्षमता के हिसाब से प्रयोग में लाती हैं।

6.4.1 इतिवृत्त

"बाबू रामजीदास धनी आदमी हैं। कपड़े की आढ़त का काम करते हैं। लेन–देन भी है। इनसे एक छोटा भाई है। नाम है कृष्णदास। दोनों भाइयों का परिवार एक ही में है। बाबू

रामजीदास की आयु 35 वर्ष के लगभग है और छोटे भाई कृष्णदास की आयु 21 के लगभग। रामजीदास निस्संतान हैं। कृष्णदास के दो संतानें हैं। एक पुत्र–वही पुत्र जिससे परिचित हो चुके हैं–और एक कन्या है। कन्या की वय दो वर्ष के लगभग है।"

विश्वम्भर शर्मा कौशिक की कहानी 'ताई' ये पंक्तियाँ इतिवृत्त की भाषा का उदाहरण हैं। इसे आप आम बोलचाल की सरल प्रवाहमयी भाषा कहते हैं। यह अभिधा है–सीधा साफ़, सूचनात्मक साफ बयान। इसका आकर्षण कथातत्त्व का अपना आकर्षण है। अभिधा भाषा का प्राथमिक धरातल है। कहानी में अभिधा इतिवृत्त की रचना करती है। इति का अर्थ है, बस, इतना ही। वृत्त में वृत्तान्त का संक्षेपण है। इतिवृत्त में वृत्तान्त और उसकी प्रस्तुति अथवा कथ्य और कथन के बीच का कलात्मक फासला न्यूनतम होता है।

किसी भी प्रकार की कहानी की भाषिक संरचना इतिवृत्त के दायरे के भीतर होती है–पूरी तरह से इतिवृत्तात्मक हो कर या उसके आंशिक स्पर्श से संवृत्त होकर। काव्यात्मक संवेदना की कहानी में भी इतिवृत्त वह स्प्रिंगबोर्ड है (स्प्रिंगबोर्ड–तैराक के लिये पानी में छलांग लगाने के लिये बना हुआ तख्ता जिस पर कूद कर गहराई में जाने के पहले कल्पना ऊपर को छलाँग लगाती है। आप जानते हैं कि निर्मल वर्मा कथा की काव्यात्मक संवेदना के दिग्गज रचनाकार हैं। उनकी प्रसिद्ध कहानी 'लन्दन की एक रात' में से यह चित्रण देखिये, "नॉर्थ ऐक्पन से ज़रा आगे चलकर मेरे पाँव खुद बखुद चिपक गये। सोचा था आज मैं जल्दी आ गया हूँ और गेट पर मेरे अलावा कोई दूसरा नहीं होगा किन्तु मेरा अनुमान सही न था। वहाँ पहले से ही बीस पच्चीस बेरोज़गार युवकों की भीड़ जमा थी। अंग्रेज़ लड़के, कुछ छात्र जो देखने में बर्मी जान पड़ते थे, दक्षिणी अफ्रीकी और वेस्ट इंडीज़ के नीग्रो।"

यह इतिवृत्त है। ऐसे टुकुड़े कहानी में बार–बार बीच में आते हैं। इनमें पाठक को वे सूचनाएँ मिलती हैं जिन्हें जोड़ कर वह कार्यव्यापार में संगति बिठाता और तह तक पहुँचता है।

लेकिन इतिहास सदा इतिवृत्तात्मक ही नहीं होता। रचनाकार का चयन–कौशल ओर संयोजन–क्षमता अभिधा को व्यंजना में पर्यवसित कर देती है। उदाहरण के लिये प्रेमचंद की प्रसिद्ध कहानी 'कफ़न' का आरंभ इन पंक्तियों से होता है–"झोपड़े के द्वार पर बाप और बेटा दोनों एक बुझे हुए अलाव के सामने चुपचाप बैठे हुए थे और अन्दर बेटे की जवान बीबी बुधिया प्रसव–वेदना से पछाड़ खा रही थी। रह रह कर उसके मुँह से ऐसी दिल हिला देने वाली आवाज़ निकलती थी कि दोनों कलेजा थाम लेते थे। जाड़ों की रात थी, प्रकृति सन्नाटे में डूबी हुई थी। सारा गाँव अंधकार में लय हो गया था।"

6.4.2 विवरण और विस्तार

'कहानी का गद्य' शीर्षक के अन्तर्गत् प्रथम पृष्ठ से लेकर अन्तिम पृष्ठ के बीच बसाए गये जिस संसार की बात कही गयी थी उसको बसाने में छोटे बड़े बहुत से विवरणों का हाथ होता है। लेखक बहुत से ब्यौरे चुनता और अपने कथ्य को तफसील या विस्तार देता है–

"बड़े–बड़े शहरों में इक्के गाड़ीवानों की ज़बान के कोड़ों से जिनकी पीठ छिल गयी है ओर कान पक गये हैं, उनसे हमारी प्रार्थना है कि अमृतसर के बम्बूकार्ट वालों की बोली का मरहम लगावें। जब बड़े–बड़े शहरों की चौड़ी सड़कों पर घोड़े की पीठ को चाबुक से धुनते हुए इक्के वाले कभी घोड़े की नानी से अपना निकट सम्बन्ध स्थिर रखते हैं, कभी राह चलते पैदलों की आँखों के न होने पर तरस खाते हैं, कभी उनके पैरों की अँगुलियों

को चीथकर अपने को ही सताया हुआ बताते हैं और संसार भर की ग्लानि, निराशा और क्षोभ का अवतार बने नाक की सीध मे ंचले जाते हैं, तब अमृतसर में उनके बिरादरीवाले तंग चक्करदार गलियों में, हरेक लड़्की वाले के लिये पहरकर, सब्र का समुद्र उमड़ाकर, 'बचो खालसा जी', 'हटो भाई जी', 'ठहरना माई', 'आने दो लाला जी', 'हटो बाछा' कहते हुए सफेद फेंटों, खच्चरों और बत्तखों, गन्ने, खोमचे और भारेवालों के जंगलों से राह खेते हैं। क्या मजाल है कि जी और साहब सुने बिना किसी को हटना पड़े। यह बात नहीं कि उनकी जीभ चलती ही नहीं, चलती है, पर मीठी छुरी की तरह महीन मार करती हुई। यदि कोई बुढ़िया बार–बार चेतावनी देने से भी लीक से नहीं हटती तो उनकी वचनावली के नमूने ये हैं–"हट जा जीने जोगिये; हट जा करमावालियें; हटजा पुत्ताँ प्यारिये; बच जा लम्बीवालिये"। समष्टि में इसके अर्थ हैं, तू जीने योग्य है, तू भाइयोंवाली है, पुत्रों को प्यारी है, लम्बी उमर तेरे समाने हैं, तू क्यों मेरे पहिये के नीचे आना चाहती है? बच जा।"

आपने पहचान लिया होगा, यह लम्बा उद्धरण 'उसने कहा था' का आरंभिक अनुच्छेद है। इतने लम्बे अनुच्छेद की जगह पर कुल इतना ही कहना भी काफी हो सकता था कि बाज़ार में बहुत चहल–पहल थी। लेकिन अगर लेखक उस संक्षिप्त वाक्य की जगह पर इतने सारे शब्द खर्च करता है तो निरुद्देश्य नहीं। एक तो वह आपको उस बाजार में ले जाकर खड़ा कर देना चाहता है, आपको वहाँ सशरीर उपस्थित होने के अनुभव से गुजारना चाहता है जहाँ बारह साल का एक लड़का और आठ साल की एक लड़की पहली बार मिले थे जिन्हें आप आगे चलकर लहनासिंह और सूबेदारनी के रूप में पहचानेंगे। दूसरे, वह बड़े शहरों की अमानवीय, निर्वैयक्तिक निष्ठुरता और उदासीनता की तुलना में पंजाब के जीवन की उच्छलता और मस्ती को, एक अपेक्षाकृत छोटे शहर की सहृदयता और मानवीयता को रेखांकित करता है। शायद इसे युद्धक्षेत्र में घटित कार्यव्यापार के भागीदार सिख पात्रों, विशेषतः लहनासिंह, के सहृदय और मस्ती भरे चरित्र और स्वभाव का जातीय उत्स भी माना जा सकता है। जाति का अर्थ यहाँ प्रादेशिक और भौगोलिक जाति से है, वर्ण व्यवस्था वाली जाति से नहीं। तीसरे, यह अनुच्छेद का अन्त वृद्ध जीवन के लिये भी शुभकामनाओं और आशीर्वादों से करता है जबकि आगे चलकर कहानी का अन्त युवा मृत्यु की एक करुण किन्तु निर्वैयक्तिक सूचना से होने वाला है।

जरूरी नहीं कि उस अनुच्छेद को कहानी का आरंभ बनाने में चंद्रधर शर्मा 'गुलेरी' का यही मन्तव्य रहा हो और जानना असंभव भी है शायद उन्होंने सिर्फ बम्बूकार्टवालों की आवाज़ों के सहारे पूरे वातावरण को जीवित कर देने का रचनात्मक कौशल ही निबाहना चाहा हो। लेकिन संरचना के प्रति सजग होकर कहानी पढ़ने का अर्थ लेखक का मन्तव्य नहीं, कहानी की मंशा को देखना है और कहानी की संरचना में यह अनुच्छेद ये सारी भूमिकाएँ निभा रहा है। संरचना के प्रति असावधान के नतीजे में ही कहानी को लगभग नब्बे साल तक अतृप्त प्रेम की भावुक, रूमानी और कुछ अविश्वसनीय से प्रेम की कहानी के तौर पर प्रशंसित किया जाता रहा है।

कथानक या कथावस्तु कहानी का न्यूनतम ढाँचा है, अस्थिपिंजर। वह वस्तु रूप में विघटित कहानी है। विवरण और विस्तार कहें या तफ़सील और ब्यौरे, उस 'वस्तु' को हाड़माँस पहना कर, रंगरूप देकर जीवित अनुभव में बदलते हैं, कहानी के भीतर का वातावरण रचते हैं। इनके चुनाव और संयोजन में ही कहानी का निवास होता है। इन ब्यौरों के द्वारा ही कहानी में किसके बाद क्या हुआ, यानी घटनाक्रम, कहाँ हुआ यानी घटनास्थल, किसने किया यानी पात्र और उनका चरित्र–चित्रण–सबकुछ रचित होता है। ये सब कहानी के कथन का हिस्सा हैं। कहानी की अन्तर्वस्तु यानी कथ्य अथवा

विचारधारा को अकथित रखा जाना अभीष्ट है क्योंकि मनुष्य को उपदेश से सहज स्वाभाविक रूप से विरक्ति होती है। कहानी में इन ब्यौरों का संयोजन उस अकथित को बिना कहे ही व्यक्त कर देने का कौशल भी संभव करता है।

6.4.3 विहंगम (sweep) और केन्द्रिक (focus)

कहानी को अपने संक्षिप्त कलवर में एक ओर कई बार अपने आकार से कई गुना अधिक समेटना पड़ता है और दूसरी ओर अपेक्षित प्रभाव–सघनता के लिये अनुभव को खोल कर फैलाना और विलम्बित भी करना पड़ता है। इन दोनों जरूरतों के अनुसार ब्यौरों के संयोजन की दो विधियाँ लेखकों ने बार–बार आजमाई और कारगर पाई है। ये दोनों प्रयोगसिद्ध विधियाँ कहानी के रचनाशास्त्र में सामान्य रूप से स्वीकृत, प्रचलित और प्रतिष्ठित हो चुकी हैं–(1) विहंगम और (2) केन्द्रिक।

विहंगम का अर्थ है ब्यौरों का ऐसा संयोजन जैसा वह उड़ती हुई चिड़िया की आँख को दिखाई देता होगा अर्थात तेज़ी से गुजरता हुआ दृश्यपटल। लेखनी पूरे दृश्यपटल को मानो बुहारती हुई, ब्यौरों को एक के ऊपर एक अध्यारोपित करती चली जाती है।

इसी संयोजन–विधि का एक नमूना ''उसने कहा था'' के आरंभिक अनुच्छेद है जिसके बारे में आपने पहले पढ़ा। यहाँ उदाहरण के लिये प्रेमचंद की प्रसिद्ध कहानी 'ईदगाह' का यह आरंभिक दृश्य याद कीजिये–

"रमज़ान के पूरे तीस रोज़ों के बाद आज ईद आई है। कितना मनोहर, कितना सुहावना प्रभात है। वृक्षों पर कुछ अजीब हरियाली है, खेतों में कुछ अजीब रौनक है, आसमान पर कुछ अजीब लालिमा है। आज का सूर्य देखो कितना प्यारा, कितना शीतल है, मानो संसार को ईद की बधाई दे रहा हो। गाँव में कितनी हलचल है। ईदगाह जाने की तैयारियाँ हो रही है। किसी के कुरते में बटन नहीं है, पड़ोस के घर में सुई धागा लेने दौड़ा जा रहा है। किसी के जूते कड़े हो गये हैं, उनमें तेल डालने के लिये तेली के घर भागा जाता है। जल्दी–जल्दी बैलों को सानी पानी दे दें। ईदगाह से लौटते लौटते दोपहर हो जाएगा। तीन कोस का पैदल रास्ता, फिर सैकड़ों आदमियों से मिलना, भेंटना, दोपहर के पहले लौटना असंभव है।"

इसी अनुच्छेद के बीच में कहीं समूचे गाँव की गतिविधियों पर घूमती यह नज़र एक विशिष्ट खण्ड पर अपेक्षाकृत विस्तार से टिकती है। अब भी यह सामूहिक चित्र ही है लेकिन इसमें विशेषीकरण के कुछ लक्षण प्रकट होने लगे हैं–

"लड़के सबसे ज़्यादा प्रसन्न हैं। किसी ने एक रोज़ा रखा है, वह भी दोपहर तक, किसी ने वह भी नहीं; लेकिन ईदगाह जाने की खुशी उनके हिस्से की चीज है। रोज़े बड़े बूढ़ों के लिये होंगे, इनके लिये तो ईद है। रोज़ ईद का नाम रटते थे। आज वह आ गई। अब जल्दी बड़ी है कि ये लोग ईदगाह क्यों नहीं चलते। इन्हें गृहस्थी की चिन्ताओं से क्या प्रयोजन! सेवैयों के लिये घर में दूध या घी है या नहीं, इनकी बला से, ये तो सेवैयाँ खाएँगे। वह क्या जानें कि अब्बाजान क्यों बदहवास चौधरी कायम अली के यहाँ दौड़े जा रहे हैं, उन्हें क्या खबर कि चौधरी आज आँखें बदल लें तो यह सारी ईद मुहर्रम हो जाए। उनकी अपनी जेबों में तो कुबेर का धन भरा हुआ है। बार बार जेब से अपना खजाना निकाल कर गिनते हैं और खुश होकर फिर रख लेते हैं। महमूद गिनता है, एक–दो, दस–बारह। उसके पास बारह पैसे हैं। मोहसिन के पास आठ, नौ, दस, पंद्रह पैसे हैं।

इन्हीं अनगिनती पैसों से अनगिनती चीज़ें लाएँगे–खिलौने, मिठाइयाँ, बिगुल, गेंद और जाने क्या क्या।"

इस विधि को अंग्रेज़ी में 'स्वीप' (sweep) कहते हैं।

दूसरी विधि केन्द्रिक अंग्रेजी शब्द 'फोक्स' संयोजन का अनुवाद है। मूलतः ये दोनों शब्द मूवी कैमरा की भाषा से लिये गये शब्द हैं। विहंगम संयोजन में कैमरा पूरे दृश्य पर घूमता है, केन्द्रिक संयोजन में वह अपने अवधान का स्थिर केन्द्र चुन लेता है, स्वयं भले ही उस विशेषीकृत दायरे में घूमता रहे।

केन्द्रिक होने के क्रम में संयोजन किसी एक बिन्दु पर निश्चयपूर्वक जाता है। इसी अनुच्देद के विवरण–विस्तार का तीसरा अंश निम्नलिखित है–

"सबसे ज़्यादा प्रसन्न है हामिद। वह चार पाँच साल का गरीब–सूरत, दुबला–पतला, लड़का, जिसका बाप गत वर्ष हैजे की भेंट हो गया, और माँ न जाने क्यों पीली होती एक दिन मर गयी। किसी को पता न चला कि क्या बीमारी है। कहती भी तो सुनने वाला कौन था। दिल पर जो कुछ बीती थी वह दिल में ही सहती थी, और जब न सहा गया तो संसार से विदा हो गयी। अब हामिद अपनी बूढ़ी दादी अमीना की गोद में सोता है और उतना ही प्रसन्न है। उसके अब्बाजान रूपये कमाने गये हैं। बहुत सी थैलियाँ लेकर आएँगे। अम्मीजान अल्लाह मियाँ के घर से उसके लिये बड़ी अच्छी अच्छी चीजें लाने गयी हैं; इसलिये हामिद प्रसन्न है। आशा बड़ी चीज़ है, और फिर बच्चे की आशा। उनकी कल्पना तो राई का पर्वत बना लेती है। हामिद के पाँव में जूते नहीं हैं, सिर पर एक पुरानी धुरानी टोपी है जिसका गोटा काला पड़ गया है, फिर भी वह प्रसन्न है। जब उसके अब्बाजान थैलियाँ और उसकी अम्मीजान नियामतें लेकर आएँगीं तो वह दिल के अरमान निकाल लेगा। तब देखेगा महमूद, मोहसिन, नूरे और सम्मी कहाँ से उतने पैसे निकालेंगे? अभागिन अमीना अपनी कोठरी में बैठी रो रही है। आज आबिद होता तो क्या इसी तरह ईद आती और चली जाती। इस अंधकार और निराशा में वह डूबी चली जा रही है। किसने बुलाया था इस निगोड़ी ईद को। इस घर में उसका काम नहीं; लेकिन हामिद! उसे किसी के जीने मरने से क्या मतलब? उसके अंदर प्रकाश है, बाहर आशा। विपत्ति अपना दलबल लेकर आए, हामिद की आनन्द भरी चितवन उसका ध्वंस कर देगी।"

आप देख सकते हैं कि पूरा दृश्य अपने विस्तार में प्रभात की लालिमा से भरे आसमान से शुरू करके, पूरे गाँव को समेटते हुए क्रमशः केन्द्रित होता हुआ बच्चों के समूह पर फिर, एक बच्चे के चेहरे हामिद पर आ टिकता है। हामिद और उसकी दादी अमीना फोकस में हैं।

केन्द्रिक संयोजन की एक अन्य विधि नाटकीय दृश्य–विधान के समकक्ष है। इस विधि में लेखक कथा या उसके किसी अंश को पात्रों के बीच साक्षात उपस्थित क्षण की तरह अंकित करता है। स्वगत, या संवाद–विवाद या विस्तृतः घटित होता हुआ कार्यव्यापार पाठक को दृश्य में शामिल कर लेता है। इतिवृत्त यहाँ सूचना की नहीं, अनुभव की भाषा में बोलता है। जैसे 'उसने कहा था' में युद्धक्षेत्र के दृश्य अथवा 'ईदगाह' में बाज़ार के दृश्य। भीष्म साहनी की कहानी 'अमृतसर आ गया है' में देश–विभाजन की पृष्ठभूमि में रेल का डिब्बा और वहाँ घटित पूरा कार्यव्यापार केन्द्रिक संयोजन की इसी विधि से तत्काल–उपस्थित–क्षण की तरह अंकित किया गया है।

6.4.4 रूपकीय संक्षेपण

विवरण विस्तार कहानी को आकार देता है लेकिन कहानी में अनुभूति की सघनता की अभिव्यक्ति के ऐसे भी अवसर होते हैं जिनमें अकारण विवरण विस्तार से प्रभाव का क्षय होता है। प्रायः ऐसे अवसरों पर कहानी में कविता के भाषिक उपकरणों का कथात्मक प्रयोग दिखाई देता है। इसे रूपकीय संक्षेपण कहने का कारण यह है कि अक्सर इसके मूल में सादृश्य–विधान के अनेक स्तर देखे जा सकते हैं। कहीं इसे अलंकृति सर्वथा स्थूल स्तर पर भी प्रयुक्त देखा जा सकता है, तो कहीं अधिक जटिल व संश्लिष्ट तहों में उतरते हुए मनःस्थिति के भावनात्मक समतोल की तरह तो कहीं किसी वस्तु में कथा को परत–दर–परत पुंजीभूत करते हुए उसे कथ्य का स्थानापन्न बना कर।

प्रसाद की ऐतिहासिक कहानियों में, उनके गंभीरतर अभिप्राय के विपरीत स्थूल अलंकृति के उदाहरण बहुतायत से मिलेंगे। शायद भाषा को वास्तविक अभिप्राय के आवरण और आच्छादन की तरह रचने की मंशा से या फिर गद्य की भाषा को इतिवृत्त के चंगुल से मुक्त करके साहित्यिक जामा पहनाने के लोभ से एक कलात्मक अतिरेक का जन्म होता है और सादृश्य को सजावट का सामान बना देता है। जैसे 'पुरस्कार नामक कहानी में "घूमता घूमता अरुण उसी मधूक वृक्ष के नीचे पहुँचा, जहाँ मधूलिका अपने हाथ पर सर धरे हुए खिन्न–निद्रा का सुख ले रही थी। अरुण ने देखा, एक छिन्न माधवी–लता वृक्ष की शाखा से च्युत होकर पड़ी है। सुमन मुकुलित थे, भ्रमर निस्पंद।"

लेकिन उन्हीं कहानियों में ऐसे झीने, बारीक संकेत भी गूँथे गये मिलते हैं जो प्रकट रूप से कहानी का अंश न होते हुए भी किसी ध्वनित सादृश्य के सहारे उस ऐतिहासिक आभास को वर्तमान तक लपेट लाते हैं। जैसे प्रसाद की उसी पुरस्कार नामक कहानी में–"श्रावरत्ती का दुर्ग, कोशल राष्ट्र का केन्द्र, इस रात्रि में अपने विगत वैभव का स्वप्न देख रहा था। भिन्न राजवंशों ने उसके प्रान्तों पर अधिकार जमा लिया है। अब वह केवल कई गाँवों का अधिपति है। फिर भी उसके साथ कोशल के अतीत की स्वर्णगाथाएँ लिपटी हैं। वहीं लोगों की ईर्ष्या का कारण है।"

किन्तु कहानी में सादृश्य–विधान सदैव केवल अलंकृति मात्रा नहीं होता। प्रायः अनुभूति को सघन बना कर साकार करता है। जैसे "काकी के लिये कई दिन तक लगातार रोते रोते उसका रूदन तो क्रमशः शान्त हो गया परन्तु शोक शान्त न हो सका। वर्षा के अनन्तर एक ही दो दिन में पृथ्वी के ऊपर का पानी अगोचर हो जाता है, परन्तु भीतर ही भीतर उसकी आर्द्रता जैसे बहुत दिन तक बनी रहती है, वैसे ही उसके अन्तस्तल में वह शोक जाकर बस गया था।" सियारामशरण गुप्त की छोटी सी 'काकी' शीर्षक कहानी की ये पंक्तियाँ अपनी खामोश सरल सादगी में सादृश्य के इस्तेमाल से अनुभूति को संघनित करती है।

किसी वस्तु को वातावरण या दृश्याबन्ध से उठाकर मनःस्थिति के भावात्मक समतोल की तरह बिम्ब में बदल देने का एक कुशल उदाहरण मोहन राकेश कृत 'मलबे का मालिक' में देखा जा सकता है।

"गनी छड़ी के सहारे चलते हुए किसी तरह मलबे के पास पहुँच गया। मलबे में अब मिट्टी ही मिट्टी थी जिसमें से जहाँ तहाँ टूटी और जली हुई ईटें बाहर झाँक रही थीं। लोहे और लकड़ी का सामान उसमें से कब का बाहर निकाला जा चुका था। केवल एक जले हुए दरवाज़े का चौखट न जाने कैसे बचा रह गया था। पीछे की तरफ दो जली

हुई अल्मारियाँ थीं जिनका कालिख पर अब सफेदी की हल्की हल्की तह उभर आई थी। उस मलबे को पास से देखकर गनी ने कहा, 'यह बाकी रह गया है? यह? और उसके घुटने जैसे जवाब दे गये, और वह वहाँ जले हुए चौखट को पकड़ कर बैठ गया। क्षण भर बाद उसका सर भी चौखट से जा सका और उसके मुख से बिलखने की सी आवाज़ निकली, "हाय, ओए, चरागदीना!

"जले हुए किवाड़ का वह चौखट मलबे में सिर निकाले साढे सात साल खड़ तो रहा था, पर उसकी लकड़ी बुरी तरह से भुरभुरा गयी थी। गनी के सिर के छूने से उसके कई रेशे झड़ कर आस–पास बिखर गये। कुछ रेशे गनी की टोपी और बालों पर आ रहे। उन रेशों के साथ एक केंचुआ भी नीचे गिरा जो गनी के पैर से छः आठ इंच दूर नाली के साथ साथ बनी ईंटों की पटरी पर इधर उधर सरसराने लगा। वह छिपने के लिये सूराख ढूँढ़ता हुआ ज़रा सा सिर उठाता, पर कोई जगह न पाकर दो एक बार सिर पटकने के बाद दूसरी तरफ मुड़ जाता।"

केन्द्रिक–संयोजन की विधि से रचित मलबे का यह दृश्य बिना किसी प्रकट संकेत या सूचना के, गनी की अनुभूति का बिम्ब बन गया है।

रूपकीय संक्षेपण का चरम शिखर या पूर्ण कलात्मक परिणति उन कहानियों में देखी जा सकती है जिनमें कथागत वस्तु अपने से कई गुना बड़े किसी यथार्थ का बिम्ब बन जाती है। उदाहरण के लिये भीष्म साहनी की 'अमृतसर आ गया है' और निर्मल वर्मा की 'लन्दन की एक रात' इस कोटि की दो प्रसिद्ध कहानियाँ हैं। कथा में अलग से उद्धृत करने के लिये कोई अंश–विशेष या भाषिक प्रयोग–विशेष नहीं बल्कि पूरी संरचना ही अपनी काया में अपने से बड़े उस अर्थ का मूर्त आकार, उसकी रूपान्विति बन जाती है, तत्काल उपस्थित यथार्थ की अभिव्यक्ति भी और उसका व्यापक विराट अर्थ भी। अलग से उद्धरणीय बिम्ब कौशल की बात छोड़ दें तो 'मलबे का मालिक' को भी आप इस कोटि में रख सकते हैं। 'अमृतसर आ गया है' में घटनास्थल रेल का डिब्बा हैं, यात्रा विभाजन पूर्व भारत में भावी पाकिस्तान से लेकर हिन्दुस्तान तक की है और इस यात्रा का देशकाल विभाजन के ठीक पहले, किन्तु विभाजन की आसन्न संभावना से दो चार होता हुआ भारत। 'मलबे का मालिक' विभाजन के साढे सात साल बाद पाकिस्तान से भारत लौट कर अपने घर को मलबे में परिणत देखने वाले व्यक्ति की कहानी है। तीसरी कहानी 'लन्दन की एक रात में हिंसा की एक रात से गुजर कर मानवीय नियति के साक्षात्कार तक पहुँचने का बयान है। तीनों ही कहानियाँ इस विकट और दारूण वैश्विक यथार्थ का मूर्त रूपकीय संक्षेपण हैं कि राजनीति का शक्ति–विमर्श जीवन का नियामक तत्त्व बन चुकी है, और राजनीति से अलग और अछूते भी वे लोग जिनका इस स्थिति को पैदा करने में न कोई हाथ है, न हिस्सा, इसका शिकार बनते हैं। दुनिया के इस दौर में जो जितना ही निरीह ओर निर्दोष है वह उतना ही असुरक्षित, वेध्य और वध्य भी है। 'अमृतसर आ गया है' का रेल का डिब्बा, 'मलबे का मालिक का मलबे का ढेर और 'लन्दन की एक रात' में संयोगवश साथ हो गये तीन अपरिचित लोगों के साथ घटित हिंसाकाण्ड ऐसे ही विराट सत्य का रूपकीय देहाकार है। 'लन्दन की एक रात' का घटनास्थल विदेशी है और राजनीति रंगभेद को जिसे जन्म पर आधारित भेदभाव की राजनीति के रूप में जाति और धर्म की राजनीति के समकक्ष रखा जा सकता है। यह देशकाल की सीमाओं के परे एक ऐसी भयावह मानवीय नियति का अध्ययन है जिसका उत्स मूलतः शक्ति–विमर्श में है, जो पूरी मानवता को घेरती है और जिसकी ओर से यह सोच कर आँखें मूँदी नहीं जा सकतीं कि वह भारतीय परिस्थिति है या नहीं। वह किसी न किसी रूप में हर जगह

मौजूद है, आज के इस वैश्विक विश्व में तो और भी अधिक।

कल्पना के संयोजन की विधियों को संख्या में बाँधा नहीं जा सकता। यहाँ केवल कुछ बहुप्रयुक्त, स्थापित और प्रतिष्ठित विधियाँ गिनाई गयीं है लेकिन अगर आप संरचना के प्रति आँखें खुली रखते हुए कहानी पढ़ेंगे तो आपको स्वयं भी इस गिनती में जोड़ने के लिये कुछ मिलता चलेगा।

6.5 सारांश

प्रस्तुत इकाई 'कहानी की भाषिक संरचना' को पढ़कर आपने जाना है कि संरचना का अर्थ किसी वस्तु के निर्माण में संयुक्त होने वाले विभिन्न घटकों और तत्वों का संयोजन है। भाषा के प्रयोग की एक विशेष विधि साहित्य है और साहित्य से इतर भाषा का रूप सामान्य भाषा है। सामान्य प्रयोग की भाषा निश्चित और रूढ़ अर्थ वाली होती है जैसे विज्ञान और शास्त्र की भाषा। परन्तु अमूर्त भावों के लिए तरल अर्थों वाली भाषा की आवश्यकता होती है। सामान्य भाषा ही विशेष रूप से प्रयोग में आकर साहित्यिक भाषा बन जाती है। भाषा के सहारे मनुष्य सिर्फ सोचता ही नहीं वरन् महसूस भी करता है अर्थात् भाषा और संवेदना का गहरा रिश्ता है। पहले छन्दबद्धता को कविता का पर्यायवाची माना जाता था परन्तु आज कविता भी गद्य में लिखी जा रही है और गद्य की सर्जनात्मक संभावनाओं का अनेकमुखी विकास किया जा चुका है। कहानी का गद्य अनुभव की जीवन्त रचना के तर्क से गढ़ा जाता है। काव्यात्मकता और नाटकीयता–सर्जनात्मक भाषा के ये दो बुनियादी लक्षण है, वह चाहे गद्य हो या पद्य। कहानी की भाषिक विधियों में इतिवृत्त, विवरण और और विस्तार, विहंगम और संकेन्द्रण रूपकीय संक्षेपण प्रमुख है जिनके प्रयोग द्वारा कहानीकार अपने अनुभव–जगत को रचता है।

अभ्यास

1. भाषा और साहित्य के रिश्ते पर टिप्पणी लिखिए।
2. निश्चित और रूढ़ अर्थ की भाषा तथा तरल अर्थ की भाषा के अंतर को स्पष्ट कीजिए।
3. कहानी के गद्य और संवेदना पर प्रकाश डालिए।
4. कहानी की भाषिक विधियाँ कौन–सी है, निरूपण कीजिए।

इकाई 7 कहानी का वर्गीकरण, औचित्य और सीमाएँ

इकाई की रूपरेखा

7.0 उद्‌देश्य

7.1 प्रस्तावना

7.2 कहानी के कुछ वर्गीकरण

7.2.1 हिन्दी के प्रारम्भिक विकास में कहानियों के कुछ मुख्य रूप :

चरित्र प्रधान कहानियाँ

वातावरण प्रधान कहानियाँ

कथानक प्रधान कहानियाँ

कार्य प्रधान कहानियाँ

7.2.2 परवर्ती कहानियों के प्रकार

यथार्थवादी कहानियाँ

मनोवैज्ञानिक कहानियाँ

नयी कहानी

अकहानी

सचेतन कहानी

समान्तर कहानी

जनवादी कहानी

सक्रिय कहानी

दलित कहानी

स्त्रीवादी कहानी

7.3 सारांश

अभ्यास

कुछ उपयोगी पुस्तकें

7.0 उद्‌देश्य

यह इकाई कहानी के वर्गीकरण के बारे में है। प्रस्तुत इकाई में हमारा उद्‌देश्य यह जानना है कि कहानी के प्रमुख प्रकार कौन–कौन से हैं? उनके वर्गीकरण के आधार क्या हैं? इस इकाई के अध्ययन के बाद आपः

1. कहानियों के विभिन्न वर्गीकरणों के बारे में जान सकेंगे/सकेंगी।

2 इन वर्गीकरणों के आधार के विषय में जान सकेंगे/सकेंगी।

7.1 प्रस्तावना

कहानी हमारे समय की लोकप्रिय साहित्य विधा है। पाठक किसी भी साहित्यिक विधा से अधिक कहानियाँ पढ़ते हैं। कहानी साहित्य के लेखकों ने कहानी के ऐतिहासिक विकास क्रम में विभिन्न प्रकार की कहानियाँ लिखीं हैं। कहानी के अध्ययन के परिप्रेक्ष्य में यह जानना जरूरी है कि कहानियाँ कितने प्रकार की होती हैं और उनकी पहचान किस प्रकार से हो। दूसरे शब्दों में यह कहानी के वर्गीकरण का सवाल है। इस तथ्य को समझे बिना न तो कहानी की ऐतिहासिक समझ विकसित हो सकती है और न ही उसका समुचित मूल्यांकन। कहानी के वर्गीकरण कई आधारों पर किये जा सकते हैं।

7.2 कहानी के कुछ वर्गीकरण

7.2.1 हिन्दी के प्रारम्भिक विकास में कहानियों के कुछ मुख्य रूप

हिन्दी कहानी के प्रारम्भिक विकास में महावीर प्रसाद द्विवेदी की पत्रिका 'सरस्वती' की महत्वपूर्ण भूमिका थी और इसी पत्रिका में छपने वाली कहानियों से हम हिन्दी की प्रारंभिक कहानी के बनते स्वरूप की चर्चा कर सकते हैं। वहीं से कहानी के प्रारंभिक प्रकार बनने शुरू हो जाते हैं। यह बात अलग है कि कहानियों के हमारे समय में किये जाने वाले वर्गीकरण कहानी के विकास के साथ ही संभव हो पाते है और उनका हमारे समय की कहानियों से बड़ा दूर का ही सम्बन्ध लगता है। सरस्वती में प्रकाशित होने वाली कहानियों में हम कल्पनाओं से भरपूर कहानियाँ, चरित्रों को लेकर लिखी गयी कहानियाँ, काल्पनिक यात्रा वर्णन, आत्मकथा के रूप में लिखित कहानियाँ पाते हैं। मगर प्रेमचन्द और प्रसाद की कहानियों के साथ हिन्दी में कहानी कला को नवोन्मेश प्राप्त होता है। हिन्दी जगत के इन दो महत्वपूर्ण कथाकारों ने कहानी के स्वरूप के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी। प्रेमचन्द और प्रसाद के दौर तक की कहानियों के कुछ रूपों की हम पहले चर्चा करेंगे। हिन्दी कहानी के विकास में इस प्रकार की कहानियों की भूमिका असन्दिग्ध है आज भले ही वे हमें कहानी कला की दृष्टि से कमतर लगें।

चरित्र प्रधान कहानियाँ

इस प्रकार की कहानियाँ हिन्दी कहानी के विकास के प्रारम्भिक चरण में अपना स्वरूप ग्रहण करती हैं। अंग्रेजी साहित्य में अठारहवीं सदी में इस प्रकार का लेखन गद्य में दिखायी देता है। एडिसन और स्टील के गद्य निबन्धों में हमे ऐसा लेखन कैरेक्टर राइटिंग के रूप में मिलता है। ऐतिहासिक विकासक्रम में चरित्र प्रधान कहानियाँ हिन्दी के प्रारम्भिक दौर की कहानियाँ बनीं जैसा कि स्वाभाविक भी था। ध्यान देने की बात है कि अंग्रेजी साहित्य में भी चरित्र प्रधान लेखन कहानी के विकास का एक महत्वपूर्ण रूप बनता है। उपन्यास भी वहीं से उभरता है। हिन्दी साहित्य में भी चरित्र प्रधान कहानियाँ प्रारम्भिक दौर में लिखी गयी थीं। प्रेमचन्द की भी बहुत सी कहानियाँ इस वर्गीकरण के अन्तर्गत् रखी जा सकती है। उदाहरण के लिए आत्माराम, बड़े घर की बेटी, बॉका गुमान, बूढ़ी काकी इत्यादि। इस प्रकार की कहानियों में पूरी की पूरी कहानी किसी पात्र के इर्द–गिर्द घूमती है। ये पात्र कभी किसी आदर्श को प्रस्तुत करते हैं तो कभी मनोरंजन का विषय बनते हैं।

वातावरण प्रधान कहानियाँ

इस प्रकार की कहानियाँ जीवन के किसी पक्ष या भावना को कहानी के विकास का मूल कारण बनाती हैं। इन कहानियों में कहानीकार अपने चित्रण द्वारा वातावरण को सजीव बनाता है। जयशंकर प्रसाद की कहानी 'आकाशदीप' इसका महत्वपूर्ण उदाहरण है। हिन्दी कहानी के क्षेत्र में सुदर्शन, चण्डी प्रसाद हृदयेश तथा राजा राधिकारमण प्रसाद सिंह ने वातावरण प्रधान कहानियाँ लिखी हैं। प्रसाद की कहानियाँ इस मामले में अपना विशिष्ट महत्व रखती हैं। आकाशदीप के अतिरिक्त प्रतिध्वनि, बिसाती, स्वर्ग के खण्डहर, हिमालय का पथिक, समुद्र–सन्तरण आदि इसी प्रकार की कहानियाँ हैं।

कथानक प्रधान कहानियाँ

इन कहानियों में चरित्रों और उनके साथ परिस्थितियों के बनते सम्बन्धों पर अधिक बल दिया जाता है। मूलतः ये कहानियाँ कथानक या कहानी कहने को ही महत्व देती हैं। विश्वम्भरनाथ कौशिक, ज्वालादत्त शर्मा और पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी जैसे कहानीकारों ने इस प्रकार की कहानियाँ अधिक लिखीं हैं। ये कहानियाँ नैरेशन अथवा आख्यान पर अधिक जोर देती हैं।

कार्य प्रधान कहानियाँ

अरस्तू ने नाटकों की चर्चा के दौरान कहा था कि नाटक चरित्र के बगैर संभव हो सकते हैं मगर कार्य अथवा एक्शन के बिना नहीं। कहानियों में भी अक्सर कार्य का महत्व बनता है। ऐसी कहानियों को कार्य प्रधान कहानियाँ कहा गया। कहानियों में आमतौर पर कार्य का महत्व होता है, मगर इन कहानियों में कहानीकार की दृष्टि हमेशा कार्य या एक्शन पर ही होती है भले और भी चीजें कहानी में महत्वपूर्ण हों जिसके चलते इन्हें कार्य प्रधान कहानी कहा गया। इनके अन्तर्गत् मुख्यतः जासूसी और विज्ञान कथाएँ आती हैं। लेकिन इन विषयों के अतिरिक्त अनेक विषयों पर इस प्रकार की कहानियाँ लिखी गयी हैं। विशेषकर गोपाल राम गहमही और दुर्गाप्रसाद खत्री की कहानियाँ इसी प्रकार की हैं।

7.2.2 परवर्ती कहानियों के प्रकार

प्रेमचन्द के समय के बाद हिन्दी कहानियों के नये परिप्रेक्ष्य सामने आये और अलग तरह की कहानियाँ लिखी गयीं। बदली हुई सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक और आर्थिक परिस्थितियों के चलते कहानियाँ नये कथ्य और रूपों के साथ सामने आयीं। इन नये रूपों के साथ हिन्दी कहानी के नये वर्गीकरण की आवश्यकता का अनुभव हुआ।

यथार्थवादी कहानियाँ

जीवन की वास्तविकताओं, उसकी समस्याओं को यथासंभव यथातथ्य प्रस्तुत करना ही यथार्थवाद है। जीवन स्थितियों का इस प्रकार से कहानियों में प्रस्तुतीकरण ही यथार्थवादी कहानी को स्वरूप प्रदान करता है।

हिन्दी कहानी के इतिहास में प्रेमचन्द के समय तक आते–आते सारे पुराने वर्गीकरण अबुद्धिसंगत और अप्रासंगिक लगने लगते हैं और यथार्थवादी कहानियों के लिए जमीन बनने लगती है। जीवन की वास्तविकताओं का जिस प्रकार का चित्रण प्रेमचन्द के यहाँ मिलता है, वह अभूतपूर्व था। विशेषकर ग्रामीण जीवन से जुड़े यथार्थ के प्रस्तुतीकरण में

प्रेमचन्द का कोई जवाब नहीं। मगर प्रेमचन्द की कहानियों में आदर्शवाद के लगातार बने रहने के चलते उनकी कहानियों को हम अक्सर आदर्शवादी–यथार्थवादी कहानियाँ कहते हैं, मगर वास्तविकता यह है कि ठाकुर का कुँआ, सद्गति, पूस की रात और कफन जैसी कहानियाँ विशुद्ध यथार्थवादी ही कही जायेंगी। प्रेमचन्द की कहानियाँ अपने प्रामाणिक सामाजिक प्रतिबिम्बन के कारण महत्वपूर्ण हैं। उनकी कहानियों में एक प्रकार की उद्देश्यपरकता भी पायी जाती है। लेकिन यह स्वीकार करना ही पड़ेगा कि उनकी कहानियाँ आदर्शवाद और उद्देश्यपरकता के होते हुए भी का यथार्थवाद के विविधरूप प्रस्तुत करती हैं। हिन्दी साहित्य में प्रेमचन्द ने यथार्थवादी और यथार्थोन्मुख कहानी के अनेक रास्ते बनाये जिन पर बाद के कहानीकारों ने चलकर कहानी की एक समृद्ध परम्परा को विकसित किया। प्रेमचन्द के समृद्ध कथा साहित्य संसार में यथार्थवाद के अनेक रंग दिखलायी देते हैं।

यशपाल ने अपनी कहानियों में प्रेमचन्द की परम्परा में मार्क्सवादी जीवन–दृष्टि को जोड़कर नया उन्मेष प्रदान किया। वे अपनी कहानियों में सामाजिक यथार्थ को महत्व देते हैं। 'फूलों का कुर्ता' और 'अभिशप्त' जैसी कहानियाँ सामाजिक यथार्थ का ही प्रतिबिम्बन करती हैं। यशपाल के कथा–साहित्य में यथार्थ के साथ ही साथ विचारधारा भी महत्वपूर्ण हो जाती है। उनकी कहानियों में शोषण, उत्पीडन और सामाजिक विसंगतियों का विरोध दिखलायी पड़ता है। यथार्थवादी कहानी की यह परम्परा हमारे समय तक अविछिन्न खिंची चली आयी है।

मनोवैज्ञानिक कहानियाँ

प्रेमचन्दोत्तर कहानीकारों ने केवल बाहरी यथार्थ को महत्व न देते हुए मनुष्य के मानसिक जगत के यथार्थ को भी महत्व दिया जिससे हिन्दी कहानी की एक नयी दिशा सामने आयी। जैनेन्द्र कुमार ने अपनी कहानियों में पहली बार चरित्रों के मनोजगत में झांकने का रचनात्मक प्रयास किया। इलाचन्द्र जोशी ने बाद में स्पष्ट मनोविश्लेषण को अपनी कहानियों में महत्व दिया। अज्ञेय की कहानियों में भी व्यक्ति और उसकी चेतना को महत्व दिया गया। अज्ञेय जैनेन्द्र से अपने जीवन–दृष्टि में अलग हैं। उनकी कहानियों में दर्शन के स्थान पर व्यक्ति–मन के प्रति वस्तुनिष्ठ होने का प्रयास है। हिन्दी में मनोवैज्ञानिक कहानियों का विकास उस प्रकार नहीं हो पाया जैसा कि पश्चिम में हुआ। हिन्दी कहानी में जेम्स ज्वायस जैसा कहानीकार मिलना संभव नहीं लेकिन हिन्दी कहानियों में मनोविज्ञान के तत्व बिखरे पड़े हैं। प्रेमचन्द की यथार्थवादी कहानियों से लेकर अज्ञेय और नयी कहानी तक के दौर में चरित्रों के मनोविज्ञान को कहानियों में स्थान दिया गया। नयी कहानी के केन्द्र में वह तकनीक थी जो पात्रों के मनोविज्ञान को संकेतों और प्रतीकों के माध्यम से व्यक्त करती थीं। अमरकांत की प्रसिद्ध कहानी 'दोपहर का भोजन' जनवादी होते हुए भी जबर्दस्त मनोवैज्ञानिक संकेतों से भरी है जहॉ अण्डर स्टेटमेण्ट ही कहानी में सब कुछ कह जाता है।

नयी कहानी

1954 के आसपास नयी कहानी की नींव पड़ चुकी थी। लेकिन इसकी वास्तविक उपस्थिति का अहसास लोगों को 1960 के आसपास हुआ। वास्तव में नयी कहानी स्वतंत्रता के बाद के भारत में उपजी नयी परिस्थितियों की देन थी। नये सामाजिक यथार्थ को नये प्रकार की कहानी की आवश्यकता थी। तमाम आन्दोलनों की ही तरह से नयी कहानी भी कोई स्पष्ट नामकरण नहीं था। यह नाम किसने दिया इस बात को लेकर

मतभेद हैं। संभवतः दुश्यन्त कुमार अथवा नामवर सिंह ने सर्वप्रथम इस नाम का उपयोग किया था। लेकिन यह स्पष्ट है कि 1957 तक यह नाम चल निकला था और प्रयाग के साहित्यकार सम्मेलन में मोहन राकेश, शिवप्रसाद सिंह, हरिशंकर परसाई ने इस नाम का प्रयोग मंच से किया।

प्रसिद्ध कथाकार राजेन्द्र यादव ने नयी कहानी को परिभाषित करते हुए लिखा था कि नयी कहानी व्यक्ति को उसकी समग्रता में देखने का आग्रह करती है और व्यक्ति को उसके सामाजिक परिवेश, मानसिक अन्तर्द्वन्द्व तथा व्यावहारिक जीवन के तकाजों और आवश्यकताओं की एक संश्लिष्ट प्रक्रिया के रूप में प्राप्त करना चाहती है। वास्तव में अपने समय के सन्दर्भ ही नयी कहानियों को कथ्य और संवेदना का धरातल प्रदान करते हैं और यहीं पर कहानी में आते जा रहे परिवर्तन का स्पष्ट आभास होता है। यह अपने समय के विद्रूपों और विसंगतियों पर केन्द्रित होती है। तत्कालीन शिक्षा, नौकरी की समस्या, नये रूप में सामने आते स्त्री–पुरुष संबंध, कामकाजी स्त्रियाँ, राजनीति से मोहभंग वगैरह नयी कहानी की विषयवस्तु के अन्तर्गत् आने वाली कुछ चीजें थीं। नयी कहानी की व्यापकता उसके विषय वैविध्य में ही निहित थी।

नयी कहानी में हमें जटिल जीवन के यथार्थ की व्यापक स्वीकृति मिलती है। नयी कहानी ने व्यक्ति की प्रतिष्ठा को महत्व दिया। ये कहानियाँ छिछली भावुकता से परे थी खासकर जैनेन्द्र की कहानियों की तुलना में। ये कहानियाँ व्यक्ति को सम्पूर्णता में प्राप्त करने का दावा करती थीं, मगर आज पीछे मुड़कर देखने पर ऐसा लगेगा कि कुल मिलाकर वे मुख्यतः मध्यमवर्गीय कहानियाँ ही थीं। फिर भी नयी कहानी किसी भी तरह से एकरूप नहीं थी। नयी कहानी को वास्तव में हिन्दी कहानी में आधुनिकता के विकासक्रम में देखा जाना चाहिए। इन कहानियों में आधुनिकता का बोध बहुत स्पष्ट रूप से झलकता है। इन कहानियों में शिल्प के स्तर पर नये–नये प्रयोग दिखलायी पड़े और कहानीकारों द्वारा इस्तेमाल किये गये संकेत एवं प्रतीक कहानियों को जटिल भी बनाते रहे। आलोचक मधुरेश का यह कहना उचित ही है कि नई कहानी यथार्थ और जीवन की वास्तविकताओं के अंकन के आधार पर पूर्ववर्ती कहानियों से विलगायी जा सकती है। इस तथ्य को स्वीकार ही करना पड़ेगा कि नयी कहानी स्वातंत्रोत्तर कहानी के विकास का एक महत्वपूर्ण चरण था और इस कहानी आन्दोलन ने हिन्दी कहानी को बहुत कुछ प्रदान किया। राजेन्द्र यादव, मोहन राकेश, कमलेश्वर, निर्मल वर्मा, मन्नू भण्डारी आदि इस दौर के महत्वपूर्ण कहानीकार थे।

अकहानी

अकहानी का विकास नयी कहानी की ही पृष्ठभूमि से हुआ। 1960–1962 के बीच कहीं अकहानी नाम का प्रयोग हुआ और इसे नयी कहानी के विरुद्ध रखने की चेष्टा की गयी। नयी कहानी के प्रारम्भ के कुछ समय बाद ही उसका विरोध भी शुरू हो गया था। यह विरोध कहानी में आने वाली जड़ता को तोड़ने के लिए था और कहानी के नये जीवन–सन्दर्भों को जोड़ने के लिए था। लेकिन इसकी परिणति बहुत सार्थक नहीं रही। इस प्रकार की कहानियों में परम्परागत मूल्यों को पूरी तरह से नकार दिया गया। ये घोर निराशा से भरी कहानियाँ थीं। गंगाप्रसाद विमल ने पहले इसे समकालीन कहानी का नाम दिया पर बाद में इसे अकहानी के रूप में परिभाषित किया। अकहानी के बहुत से कहानीकार नयी कहानी से भी जुड़े थे। अतः नयी कहानी के बहुत से तत्व इस आन्दोलन की कहानियों में भी बने रहे।

अकहानी का मूलस्वर साठोत्तरी अकविता की ही तरह निषेध और विरोध का है। इसी कारण अकविता के बहुत से कवि अकहानी में भी सक्रिय रहे। इसमें मुख्यतः गंगा प्रसाद विमल, राजकमल चौधरी, जगदीश चतुर्वेदी आदि का नाम लिया जा सकता है जो कविता से अकहानी तक में सक्रिय थे। अकहानी के सूत्रकारों के अनुसार अकहानी स्वीकृत कहानी मूल्यों का निषध करती थी और किसी भी प्रकार के मूल्य स्थापन का विरोध करती थी। इस अर्थ में यह कहानी आन्दोलन अराजकता की ओर ले गया।

इस कहानी आन्दोलन पर पश्चिमी प्रभाव कुछ ज्यादा ही स्पष्ट थे। फ्रांस में चल रहे एंटी स्टोरी आन्दोलन से अकहानी आन्दोलन प्रभावित था जो किसी भी जीवन या कला मूल्य की स्थापना के विरुद्ध था। गंगाप्रसाद विमल, जगदीश चतुर्वेदी, रवीन्द्र कालिया, दूधनाथ सिंह, प्रयाग शुक्ल, सुधा अरोड़ा, रमेश बक्षी, ज्ञानरंजन, श्रीकान्त वर्मा, विजयमोहन सिंह, विश्वेश्वर आदि कहानीकार इस आन्दोलन से जुड़े थे।

सचेतन कहानी

सचेतन कहानी का प्रारम्भ महीप सिंह द्वारा किया गया। 1964 में 'आधार' नामक पत्रिका का सचेतन कहानी विशेषांक प्रकाशित हुआ था जिसे इस आन्दोलन का प्रारम्भ माना जा सकता है। इस आन्दोलन ने जीवन के प्रति सचेतन दृष्टि अपनाने पर बल दिया था। सचेतन कहानी ने कहानी में पश्चिम से आयातित आधुनिकता और उसके मूल्यों का विरोध किया था। इन आयातित मूल्यों में निराशा, कुण्ठा, ऊब, अकेलापन, और अनास्था आदि के प्रतिकार को कहानी का लक्ष्य माना गया था। महीप सिंह सचेतन कहानी को नई कहानी की आत्मपरकता से दूर रखना चाहते थे। सचेतन कहानी ने भारतीय परिवेश में प्रवाहमान जीवन मूल्यों को कहानी में उतारने का प्रयास किया था। महीप सिंह, कमल जोशी, मधुकर सिंह, योगेश गुप्त, वेद राही, हिमांशु जोशी, मनहर चौहान आदि कहानीकार इस आन्दोलन से जुड़े थे। यह आन्दोलन अधिक दिनों तक नहीं चल सका। इसका कारण यह था कि इस आन्दोलन से जुड़े कहानीकार नयी कहानी की कहानियों से कुछ अधिक न कर सके।

वास्तव में सचेतन कहानी ने नयी कहानी पर जो आरोप लगाये थे वे बिल्कुल सही नहीं थे। नयी कहानी में पश्चिम के तत्व भर नहीं थे। वह व्यापक भारतीय परिवेश की कहानियाँ थीं जिनमें बदलता भारत प्रतिबिम्बत हो रहा था। इसके अतिरिक्त सचेतन कहानी के कहानीकार हिन्दी की प्रगतिशील परम्परा से एक दूरी बनाये रखना चाहते थे। वे अपने सिद्धान्तों में जिस कहानी का आदर्श सामने रख रहे थे वे प्रेमचन्द जैसे कहानीकारों के करीब बैठते थे। मगर महीप सिंह स्वयं प्रगतिशील परम्परा से एक खास दूरी बनाये रखना चाहते थे। शायद इसका कारण यह था कि वे ऐसा करके अपनी और सचेतन कहानी की एक अलग पहचान बनाये रखना चाहते थे। इसलिए उन्होंने इसे सार्त्र के अस्तित्ववादी दर्शन के सक्रिय और सकारात्मक पक्ष से जोड़ा।

समान्तर कहानी

हिन्दी साहित्य में यह आन्दोलन कमलेश्वर द्वारा 1972 के आसपास प्रारम्भ किया गया था। इस दौर में वे सारिका जैसी प्रभावकारी पत्रिका के सम्पादक थे जिसके माध्यम से उन्होंने इस आन्दोलन को व्यापक बनाने का प्रयास किया । कमलेश्वर ने इस आन्दोलन के सूत्रों को काफी चिन्तन के बाद अवधारित किया था। सारिका मे माध्यम से कमलेश्वर ने समान्तर कहानी पर चर्चाएँ आयोजित की थीं। दूरदराज क्षेत्रों में शिविर आयोजित किये थे। गोष्ठियों और शिविरों से निकले निष्कर्षों से कहानी का स्वरूप विकसित हुआ।

समान्तर कहानी आन्दोलन ने कहानी में आम आदमी को प्रतिष्ठित करने का प्रयास किया था। आम आदमी को परिभाषित करते हुए कमलेश्वर ने उसे एक संश्लिष्ट व्यक्तित्व के रूप में परिभाषित किया था। समान्तर कहानी में प्रतिबद्धता से मुक्त होकर जनता और जन–जीवन से जुड़ने की आकांक्षा थी लेकिन यहाँ एक प्रकार का अमूर्तन काम करता था जो नयी कहानी से अलग न था। बाद के आलोचकों ने इसे आम आदमी के नाम पर आम आदमी के विरुद्ध लड़ी जा रही लड़ाई बताया था। भैरवप्रसाद गुप्त ने इसे क्रान्ति के नाम पर क्रान्ति के पीठ पर छुरा भोंकना बताया था।

कहानी के इस आन्दोलन से जुड़े रचनाकारों ने विभिन्न प्रकार के सन्दर्भों में आम आदमी के संघर्षों को कहानियों में स्थान दिया। यह आन्दोलन भी बहुत सफल नहीं रहा और कमलेश्वर तथा उनसे जुड़े लेखकों तक ही सीमित रहा। से. रा. यात्री, मेहरुन्निसा परवेज, जितेन्द्र भाटिया, मधुकर सिंह, इब्राहिम शरीफ, दामोदर सदन, स्वदेश दीपक, आलमशाह खान, निरुपमा सोबती, सुधा अरोड़ा आदि कहानीकार इस आन्दोलन से जुड़े थे।

जनवादी कहानी

जनवादी कहानियों ने जनवाद को अपना आधार बनाया और मजदूरों, किसानों, दलित, शोषित वर्ग के लोगों को अपनी कहानी के केन्द्र में रखा। यह कहानी आन्दोलन वर्ष 1977 में दिल्ली विश्वविद्यालय में जनवादी विचार मंच की स्थापना के साथ हुआ। 1978 में जनवादी लेखकों का एक लेखक शिविर आयोजित हुआ जिसमें लेखकों ने 1967 से 1977 तक के जनवादी साहित्य का मूल्यांकन किया। बाद में इस प्रकार की कहानियों को लेकर लम्बी बहसें 'हंस' जैसी पत्रिकाओं में आयोजित की गयीं। जनवादी कहानियों की औपचारिक घोषणाओं से पहले की कहानी की प्रगतिशील परम्परा को जनवादी कहानियों की परम्परा से ही जोड़कर देखना चाहिए।

प्रकाशचन्द्र गुप्त ने वर्ष 1953 में प्रकाशित अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'हिन्दी साहित्य की जनवादी परम्परा' में जनवाद को कबीर के समय से ही रेखांकित किया था। मगर 1982 में जनवादी लेखक संघ की स्थापना के बाद यह आन्दोलन संगठित रूप से चला। जनवादी कहानीकार ऐसा अनुभव कर रहे थे कि कहानी के तत्कालीन आन्दोलन नयी कहानी समान्तर कहानी इत्यादि, आम आदमी की बात तो करते थे मगर उनकी संघर्षशील चेतना और वर्गीय पृष्ठभूमि को धुंधलाते थे। सर्वहारा चिन्ता से बढ़कर यह आन्दोलन सामाजिक स्थितियों में बदलाव लाना चाहता था। इसी कारण यह प्रतिगामिता और यथास्थितिवाद का विरोध करता है। एक तरफ इस आन्दोलन ने अमूर्त मानववाद का विरोध किया तो दूसरी ओर समान्तर कहानी के वर्गाधार विहीन आम आदमी की भी आलोचना की। जनवादी लेखकों के लिए ये दोनों कहानी आन्दोलन यथास्थितिवादी थे।

लेकिन वस्तुस्थिति यही है कि जनवादी कहानी अपने से पहले की प्रगतिशील कहानी का ही विस्तार है। इसीलिए जनवादी कहानियों के सूत्रधारों की परम्परा मुंशी प्रेमचन्द से लेकर यशपाल, रांगेयराघव, भैरव प्रसाद गुप्त, मार्कण्डेय, भीष्म साहनी, अमरकांत, शेखर जोशी, ज्ञानरंजन, काशीनाथ सिंह, असगर वजाहत, और उदय प्रकाश तक पहुँचती है। हिन्दी कहानी के बहुत से आलोचकों ने भी इसके सूत्रों को प्रगतिशील कहानी में तलाशने का यत्न किया है।

नयी कहानी में व्याप्त आत्मपरकता का विरोध भीष्म साहनी, अमरकांत, मार्कण्डेय और शेखर जोशी जैसे लेखकों ने अपनी कहानियों के माध्यम से किया। नयी कहानी और जनवादी कहानी में अन्तर करने का मुख्य आधार अनुभववाद और विचारधारा के बीच का है। लेकिन ये लेखक कहानी के विकास से परिचित होने के नाते किसी विचार को आधार में रखकर कहानी नहीं गढ़ते। इस अर्थ में उन्हें राहुल या यशपाल जैसे पूर्ववर्ती कथाकारों से विलगाया जा सकता है।

जनवाद के प्रचलित फार्मूलों से परे जब भी इस प्रकार की कहानी जीवन की ओर प्रवृत्त हुई है तो श्रेष्ठ कहानियाँ लिखी गयी हैं।

सक्रिय कहानी

इस कहानी आन्दोलन के पुरोधा राकेश वत्स थे। सक्रिय कहानी से उनका तात्पर्य चेतनात्मक उर्जा और जीवन्तता की ओर जाने वाली कहानियों से था। यह उस समझ और अहसास की कहानी है जो मनुष्य को किंकर्तव्यविमूढ़ता से मुक्ति प्रदान करे और अपनी कमजोरियों से लड़ने के लिए तत्पर करे। इस कहानी आन्दोलन ने जनवादी कहानी और समान्तर कहानी के तमाम तत्वों को मिला दिया। रमेश बत्रा, चित्रा मुद्गल, सच्चिदानन्द घूमकेतु, सुरेन्द्र सुकुमार, धीरेन्द्र अस्थाना आदि लेखकों ने इस आन्दोलन को सहयोग और समर्थन दिया।

दलित कहानी

हिन्दी साहित्य में दलित लेखन को एक दौर में मराठी साहित्य की कलम माना जाता था। मगर दलित साहित्य लेखकों ने अपने लेखन से हिन्दी साहित्य में अपना अलग स्थान बना लिया है। इसका सबसे बड़ा कारण हिन्दी समाज में दलितों की स्थिति रही है जो ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में शोषण और उत्पीड़न के शिकार रहे हैं। यही कारण है कि प्रेमचन्द और उनके जैसे अन्य प्रगतिशील लेखकों ने दलितों की स्थिति पर कलम चलायी है। हिन्दी जगत में दलित समाज की स्थिति पर बहुत सी कहानियाँ हैं और प्रेमचन्द की कहानी 'ठाकुर का कुआँ' तथा 'सद्गति' जैसी कहानियाँ इसका उदाहरण हैं। लेकिन बाद के दलित लेखकों ने इन्हें गैरदलित लेखकों द्वारा लिखी गयी कहानियाँ बतलाया और कहा कि इनमें दलितों की यातना और दुर्दशा का चित्रण तो अवश्य है मगर उनमें संघर्ष और चेतना का अभाव है।

दलित लेखकों की यह सैद्धाँतिक अवस्थिति विवाद का विषय रही है मगर यह सच है कि हिन्दी साहित्य में अलग से दलित कहानियाँ लिखी हैं। दलित लेखकों ने अपनी कहानियों में मुख्यतः दलित जीवन के अनुभूत यथार्थ के चित्रण द्वारा दलित जीवन की त्रासद कथा, सामंती आतंक और वर्णव्यवस्था के विरुद्ध तीव्र आक्रोश और विरोध दर्ज किया है। बुद्धशरण हंस, मोहनदास नैमिशराय, ओमप्रकाश वाल्मीकि, श्यौराजसिंह बेचैन, जयप्रकाश कर्दम, सूरजपाल चौहान आदि प्रसिद्ध दलित कहानीकार हैं।

स्त्रीवादी कहानी

स्त्रियों की समस्याओं और संवेदना को लेकर लिखी गयी कहानियों को अक्सर स्त्रीवादी कहानियों के नाम से पुकारा जाता है। लेकिन अधिकांश लेखिकाएँ इस प्रकार के

वर्गीकरण को अस्वीकार करती हैं और स्वयं को उनमें शामिल नहीं करती हैं। फिर भी हिन्दी कहानी में पिछले तीन दशकों से स्त्री कहानीकारों ने अपनी सोच–समझ–संवेदना के आधार पर अपनी एक अलग पहचान बनायी है जिसे स्त्री सम्बन्धित कहानियों के वर्ग में रखा जाना चाहिए। दरअसल स्त्रीवाद से हिन्दी की अधिकांश लेखिकाओं को परहेज इसलिए है कि इस नाम से एक विशेष प्रकार का आन्दोलन यूरोप में चला है जिसके तमाम तत्वों को हिन्दी की लेखिकाएँ स्वीकार नहीं करती हैं। मगर यह भी एक सच है कि पश्चिम में स्त्रीवादी लेखन से लेखिकाएँ किसी न किसी प्रकार से प्रभावित भी हैं। खासकर सीमोन द बोउआ की पुस्तक 'द सेकण्ड सेक्स' का प्रभाव बहुत सी लेखिकाओं पर पड़ा है। उनकी इस पुस्तक का प्रभा खेतान द्वारा किया गया अनुवाद बेहद प्रभावकारी रहा है।

लेखिकाओं द्वारा स्वयं को स्त्रीवादी न मानने के पीछे भी नारी मुक्ति आन्दोलन का एक तत्व है। हिन्दी कहानी लेखिकाएँ यह मानकर चलती हैं कि स्त्रियों के लिए अब कोई भी क्षेत्र वर्जित नहीं है और स्त्री के साथ भेद–भाव ठीक नहीं। पहले भी सुभद्राकुमारी चौहान, चन्द्रकिरन सौनरेक्सा कहानियाँ लिखती रही हैं मगर उन्हें कभी स्त्रीवादी–कथाकार नहीं माना गया।

नयी कहानी के दौर में ही लेखिकाओं ने अपनी अलग पहचान बनायी थी, विशेषकर सेक्स सम्बन्धी साहसिक लेखन के द्वारा। मृदुला गर्ग, ममता कालिया, और मृणाल पाण्डेय ने इस प्रकार का लेखन प्रारम्भ किया था। लेकिन बाद में इन सभी लेखिकाओं ने कहानी की नयी दिशाएँ अपनायी थीं। नासिरा शर्मा जैसी लेखिकाओं की कहानियाँ सदैव व्यापक धरातल पर खड़ी हुई हैं। राजी सेठ, सूर्यबाला, चन्द्रकान्ता, चित्रा मुद्गल, मैत्रेयी पुष्पा, गीतांजलिश्री, सारा राय, अलका सरावगी जैसी लेखिकाओं ने अपनी कहानियों में स्त्री संवेदना और स्त्री–समस्याओं को स्थान दिया है।

7.3 सारांश

जैसा कि आपने पिछले कुछ पृष्ठों में देखा कहानी के वर्गीकरण को हिन्दी साहित्य और समाज के ऐतिहासिक विकास के सन्दर्भ में ही रेखांकित किया जा सकता है। कहानी के विभिन्न रूप समाज में आते परिर्वतनों के साथ ही बने हैं। प्रेमचन्द के समय में यथार्थवादी कहानी के उदय और विकास के पीछे समाज के प्रति विशेष प्रकार के उत्तरदायित्व का बोध था जिसकी पृष्ठभूमि में भारत का स्वतंत्रता आन्दोलन था। भारतीय समाज में परिवर्तन की आकांक्षा के चलते यह यथार्थवाद यशपाल, रांगेय राघव आदि कहानीकारों की कहानियों से होते हुए जनवादी कहानियों तक पहुँचता है। भारतीय समाज में लोकतन्त्र के विकास के साथ ही साथ मध्यमवर्ग के उत्थान के चलते मनोवैज्ञानिक और नयी कहानी सामने आती है। जैसा कि आपने देखा बाद के दौर में कहानी के विभिन्न आन्दोलन नयी कहानी की ही किया–प्रतिकिया में सामने आते हैं। राजनीतिक विचारधारा और प्रतिबद्धता जनवादी कहानी को विकसित करती है। भारतीय समाज में लम्बे समय से हाशिये पर पड़े दलित समाज ने अपने दलित कहानीकारों में अपना प्रतिनिधित्व प्राप्त किया। दूसरी ओर आधी आबादी का प्रतिनिधित्व करने के लिए स्त्री कहानीकार सामने आती हैं। संक्षेप में हिन्दी कहानी का वर्गीकरण हिन्दी समाज की सामाजिक, राजनीतिक, ऐतिहासिक और आर्थिक पृष्ठभूमि के सापेक्ष किया जा सकता है। मगर साथ ही साथ कहानी के उन तत्वों के विकास को भी रेखांकित करना होगा जो कहानी आन्दोलनों के दौरान रूपायित होते हैं। नई कहानी आन्दोलन के साथ कहानी की तकनीक में भी बहुत से परिवर्तन हुए।

अभ्यास

1. हिन्दी कहानी की प्रारंभिक विकास–यात्रा के विभिन्न रूपों को स्पष्ट कीजिए।
2. कहानी में अस्तित्वाद की भूमिका पर प्रकाश डालिए।
3. 'अकहानी' आन्दोलन के प्रेरक तत्वों पर टिप्पणी लिखिए।
4. 'जनवादी' कहानी किन तत्वों से प्रभावित होकर लिखी गई? स्पष्ट कीजिए।
5. 'समकालीन' कहानी की अवधारणा को स्पष्ट करते हुए प्रमुख कहानीकारों पर टिप्पणी लिखिए।

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

इकाई 8 कहानी की आलोचना की परंपरा

इकाई की रूपरेखा

8.0 उद्देश्य

8.1 प्रस्तावना

8.2 वैश्विक परिदृश्य में कहानी की आलोचना की परंपरा

8.3 हिंदी साहित्य में कहानी की आलोचना की परंपरा

8.3.1 हिंदी साहित्य में कहानी की आलोचना के आरंभिक प्रयास

8.3.2 हिंदी समाज में स्वीकृति पाने का संघर्ष

8.3.3 कहानी के साथ हिंदी आलोचना के सलूक का प्रश्न

8.3.4 कहानी आलोचना का पूर्व–परिदृश्य

8.3.5 हिंदी कहानी और कहानी आलोचना के विकास में सहवर्तिता का अभाव

8.3.6 कहानी की आंदोलनात्मक दिशाएं

8.3.7 कहानी की आलोचना में काव्यालोचना के उपनिवेश और कहानी की आलोचना की मुक्ति का प्रश्न

8.3.8 कहानी आलोचना में कुछ प्रमुख हस्तक्षेप

8.4 सारांश

अभ्यास

8.0 उद्देश्य

यह एम. ए.(हिंदी) के द्वितीय वर्ष से संबंधित मॉड्यूल के पाठ्यक्रम 'कहानी :स्वरूप और विकास' से संबद्ध दूसरे खण्ड की आठवीं इकाई है। इस इकाई में हम कहानी की आलोचना की परंपरा के विकास पर (जिसमें वैश्विक आधार पर कहानी की आलोचना के विषय में सोची समझी गयी जरूरी बातों को शामिल करने की भी कोशिश की जायेगी) बात करेंगे। जैसा कि हम जानते हैं कि कहानी अपेक्षाकृत एक नयी विधा है। जहाँ तक कहानी की आलोचना का सवाल है, उसे व्यवस्थित रूप तो और देर से प्राप्त हुआ। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप विश्व में और हिंदी साहित्य में कहानी की आलोचना की परंपरा के विकास को समझ सकेंगे/सकेंगी।

8.1 प्रस्तावना

जिस तरह कविता और उपन्यास की व्यवस्थित आलोचना मिलती है उस तरह कहानी की आलोचना कम ही मिलती है। कविता, उपन्यास और अन्य विधाओं में जिस तरह आलोचकों ने दिलचस्पी ली, कहानी में वैसी दिलचस्पी का अभाव रहा। अतः कहानी के बारे में जो भी विचार और सौंदर्य–दृष्टियाँ सामने आयीं वे ज़्यादातर कहानी लेखकों के व्यक्तिगत निबंधों और धारणाओं की देन थीं। बाद में कहानी–संकलनों की भूमिकाओं ने कहानी की आलोचना की व्यवस्थित ज़मीन तैयार करने में मदद की।

8.2 वैश्विक परिदृश्य में कहानी की आलोचना की परंपरा

लंबे समय तक कहानी को नये और कम अनुभव वाले लेखकों की विधा माना गया। इसके पीछे यह सोच काम कर रही थी कि उपन्यास लिखने के लिये काफी अनुभव और परिपक्वता की ज़रूरत होती है। इसलिये उपन्यास को गंभीर विधा और कहानी को हल्का–फुल्का लेखन समझा गया। लेकिन इस धारणा का कहानी लेखकों नें पुरज़ोर विरोध किया। सबसे गौरतलब बात यह है इन कहानीकारों में बहुत से ऐसे लेखक थे जो अपने दौर के महान उपन्यासकार भी थे। इन लेखकों नें कहानी में संक्षिप्तता को, प्रभाव की एकान्विति को, चरित्रों की सीमित संख्या को उसकी ताकत माना। सामरसेट मॉम ने कहानी की सराहना इस बात के लिये की कि संक्षिप्त होने के बावजूद उसका एक आरंभ होता है, एक मध्य होता है और एक अंत होता है। गाई दे मोपासाँ ने संक्षिप्तता के बावजूद जीवन के यथार्थवादी पक्षों की असरदार अभिव्यक्ति के लिये कहानी को एक मूल्यवान विधा के रूप स्वीकार किया। कहानी के लेखकों ने इस बात पर बहुत ज़ोर दिया कि यहाँ एक विस्तृत कथानक को रचने और अंतःसंघर्षों को सुलझाने की बाध्यता नहीं होती। कहानी अपने संक्षिप्त स्वरूप में ही भावार्थ के सूक्ष्म उतार–चढ़ावों को चित्रित करने में सक्षम होती है। वे कहानी लेखक जो अपने दौर के प्रसिद्ध उपन्यासकार भी थे, उन्होंने अपने अनुभव के आधार पर कहानी विधा को इस तथ्य की रोशनी में कलात्मकता से परिपूर्ण माना कि उपन्यास के उलट यहाँ पात्रों के भौतिक चित्रण की कोई आवश्यकता नहीं होती। पात्रों की खूबियों और कमजोरियों को उनके आपसी वार्तालापों के द्वारा ही उभारा जाता है। इन कहानीकारों (जो उपन्यासकारों के रूप में भी लोकप्रिय हुए) के विचार कहानी की आलोचना के विकास में महत्वपूर्ण साबित हुए क्योंकि यह उपन्यास और कहानी की रचना प्रक्रिया के दौरान उनके अपने कला–अनुभवों पर आधारित थे। ट्रूमैन कपोट का स्पष्ट कहना था कि गंभीरता से देखने पर आम धारणा के विपरीत कहानी मुझे एक ऐसा कलारूप प्रतीत होती है जिसे साधना सबसे ज्यादा कठिन है और जो अभी तक प्रचलित सभी गद्य रूपों में सबसे ज़्यादा अनुशासन की माँग करती है। एक लेखक के रूप में जो भी तकनीक और कला कौशल मैने अर्जित किया है, वह इसी कलामाध्यम में हाथ आज़माने के चलते आया है। कहानी के वाक्यविन्यास की लय में हल्की सी गड़बड़ी भी उसे बिगाड़ देती है। कपोट नें बिना किसी लाग लपेट के कहा कि जेम्स ज्वायस नें कहानी को चाहे जितना अगंभीर माना हो, वे 'यूलिसिस' जैसा कालजयी उपन्यास नहीं लिख सकते थे, यदि वह 'डब्लिनर्स' जैसी महान कहानी न लिखते। चेखव के कहानी विषयक विचारों ने बाद के कहानीकारों और कहानी के आलोचकों को गहराई से प्रभावित किया। चेखव का कहना था कि कहानी में वह उतना महत्वपूर्ण नहीं होता जो उसकी सतह पर दिखता है, बल्कि वह ज़्यादा महत्वपूर्ण होता है जो उसके भीतर छिपा हुआ होता है। चेखव की इसी धारणा से इत्तेफाक रखते हुए कहानी के संदर्भ में हेमिंग्वे ने समुद्र में बहती हुई बर्फ की विशाल चट्टान का प्रतीक गढ़ा। हेमिंग्वे ने कहा कि मैं कहानी लिखते समय आईसबर्ग (समुद्र में बहती हुई बर्फ की विशाल चट्टान) के सिद्धांत का हमेशा ध्यान रखता हूँ। दिखाई देने वाले प्रत्येक हिस्से का आठ में से सातवां भाग हमेशा समुद्र की सतह के नीचे छिपा रहता है। जो हिस्सा दिखता है उसे मिटाया जा सकता है, मगर ऐसा करने पर आईसबर्ग के छिपे हिस्से को मजबूती ही मिलती है। अगर कहानी लेखक वे चीजें छोड़ देता है जिनसे वह अनजान है, तो कहानी में छेद हो जाता है। फ्रैंक ओ कॉनर का कथन है कि "मुझे कहानी ही एकमात्र ऐसी विधा लगती है जो तटस्थता की दृष्टि से लिरिक कविता के काफी नजदीक होती है"। उपन्यास एक वृहत तर्कणा की, परिस्थितियों की वृहत जानकारी की माँग करता है। जबकि कहानी के साथ

यह बात नहीं होती, वह परिस्थितियों के प्रति वैसे ही तटस्थ रहती है जिस तरह लिरिक कविता। कहानी में एक स्पष्ट प्रसंग होता है, याने कहानी में सुनाने के लिये एक कहानी होती है। यह प्रसंग केवल एक घटना नहीं होता, बल्कि अर्थ की सघनता से परिपूर्ण अनुभव होता है। कैथरीन एन पोर्टर ने स्वीकार किया कि जब तक वे कहानी का अंत नहीं लिखतीं, वे कहानी की शुरुआत नहीं कर पातीं: "हमेशा मैं अपनी कहानी का आखिरी वाक्य, आखिरी अनुच्छेद, आखिरी पेज पहले लिखती हूँ, फिर वापस जाकर कहानी को लिखना शुरू करती हूँ। इससे मुझे पता रहता है कि मैं कहाँ जा रहा रही हूँ, मेरा क्या लक्ष्य है।" एडगर एलन पो को कहानी का पहला सचेत सिद्धांतकार होने का गौरव प्राप्त है। उन्होंने पहली बार कहानी के आरंभ के महत्व को उसके अंत के साथ जोड़ते हुए कहानी की सैद्धांतिक संरचना को एक सुव्यवस्थित रूप देने की कोशिश की थी।

कहानी लेखन के अपने अनुभव का जिक्र करते हुए आई. बी. सिंगर ने कहा : ''कहानी लिखते समय मैं सदा इस बात का ध्यान रखता हूँ कि मैं जो कुछ भी कहना चाह रहा हूँ उसका एक वैचारिक परिदृश्य है। यह दुनिया और यह जीवन, जैसे कि हमें दिखते हैं, मनुष्य के लिये सबकुछ नहीं हैं। बहुत कुछ है जो इस जीवन और जगत के पार है और जिसे हम सतह पर देख नहीं पाते। कहानी में हमें सतह के पार के सत्यों की अनुभूति होती है। हालाँकि मैं धार्मिक दृष्टि से रूढ़िवादी नहीं हूँ, फिर भी जीवन के पार के सत्य मुझे कहानी में आकर्षित करते हैं।'' जॉन स्टाईनबेक का कथन है कि "हर कहानी में लेखक कुछ कहना चाहता है। मगर वह इसे कैसे कहेगा इसका कोई गणितीय फार्मूला नहीं है"। हर लेखक को अपनी बात कहने के लिये निजी तरीका अपनाना होता है जिसे दूसरा कहानी लेखक नहीं अपना सकता। कहानी के हर लेखक का अपना सत्य उसके भीतर की अनुभूतियों को नई तरह से अभिव्यक्त करने की उसकी पीड़ा का प्रतिफल होता है। कहानी का जादुई असर पाठक पर पड़ता है। बर्नार्ड मलामुड कहते हैं कि कहानी जीवन के कालखण्ड पर आधारित होती है। कहानी में होने वाला 'घटित' संक्षिप्त, तेजी से आकार लेने वाला और अद्‌भुत होता है। कहानी एक ऐसा तरीका है जिसमें लेखक जीवन की जटिलताओं को चंद पृष्ठों में इस तरह समेट पाने में सक्षम होता है कि कम समय में ही जिंदगी की गहरी समझ को आश्चर्यजनक घुमावों के साथ पाठकों के सम्मुख प्रस्तुत किया जा सके। कहानी में जीवन की संवेदना अपने बहुवर्णी और बहुधर्मी स्वरूप में अभिव्यक्त होती है। कहानी में कविता की ही तरह बहुत कम अंतराल में विरुद्धों का सामंजस्य प्रस्तुत करने की अद्‌भुत क्षमता होती है। यूडोरा वेल्टी के अनुसार कहानी जीवन के संघर्षों की यथार्थ अभिव्यक्ति के लिये सबसे कारगर विधा है। कहानी में एक प्रभावशाली 'मूड' होता है। पात्र, घटनाएं, परिदृश्य सब इस 'मूड' के अधीन होते हैं। कहानी जीवन की नश्वरता और क्षण भंगुरता को पूरी संजीदगी के साथ प्रस्तुत करती है। कहानी में जीवन की व्यंजनायें अपने सांकेतिक स्वरूप मे उपन्यास की तुलना में ज़्यादा बेहतर तरीके से उद्‌घाटित होती हैं। जीवन की विसंगतियों को कहानी सौंदर्यपरक आयामों में कुशलता से रूपांतरित करती है।

एलिजाबेथ बोवेन का विचार है कि कहानी में उपन्यास की तरह निश्चयात्मक आधारों के प्रयोग की बाध्यता नहीं होती। इसीलिये कहानी नैतिक और सौंदर्यपरक सत्यों तक सहजता से पहुँच सकती है। कहानी उपन्यास की तुलना में मनुष्य को चेतना के भीतरी मंच पर साहस के साथ खड़े होने का सामर्थ्य प्रदान करती है।

उपरोक्त कहानीकारों और विद्वानों के विचार इस बात की एक बानगी प्रस्तुत करते हैं कि आज वैश्विक परिदृश्य में कहानी की आलोचना एक परिपक्व स्वरूप ग्रहण कर चुकी है।

एशियाई, अफ्रीकी, लातिन अमेरिकी आदि देशों (वह देश जो साम्राज्यवादी शोषण का शिकार हुए) की कहानियों की आलोचना ने उत्तर–औपनिवेशिक विचार प्रणालियों, साम्राज्यवाद विरोधी दृष्टिकोणों, नेग्रीट्यूड की अवधारणाओं को बखूबी आत्मसात किया है।

8.3 हिंदी साहित्य में कहानी की आलोचना की परंपरा

8.3.1 हिंदी साहित्य में कहानी की आलोचना के आरंभिक प्रयास

हिंदी में, एक विधा के रूप में उपन्यास के जन्म को भले ही पश्चिमी साहित्य–रूप से प्रभावित परिघटना माना जाये, लेकिन 'कहानी' के बारे में ऐसा मानना उचित नहीं है। 'कहानी' किसी न किसी (मौखिक और लिखित) रूप में भारतीय समाज की अपनी परंपरा में बहुत पहले से रही है। वाचिक रूप में लोक–कथाओं का हिंदी में, खास तौर से उसकी बोलियों में, अक्षय–कोश रहा। लिखित रूप में तो संस्कृत साहित्य में भी कहानी के आद्य रूप पाये जाते हैं। 'हितोपदेश', 'पंचतंत्र', 'वेताल पंचविंशतिका' और 'सिंहासन द्वात्रिंशिका' आदि का उल्लेख इस संदर्भ में बहुधा होता है। पालि में जातक कथाओं के रूप में कहानी का अस्तित्व रहा। लेकिन इन पारंपरिक रूपों में कहानियाँ प्रायः नीति–कथन का माध्यम मात्र होती थीं।

मात्र नैतिक उद्देश्य या मनोरंजन वाले उद्देश्य से हटकर मानव जीवन के भौतिक अनुभवों की अभिव्यक्ति का दायित्व स्वीकरने वाली, गद्य की एक स्वतंत्र विधा के तौर पर कहानी ने जो आधुनिक रूप ग्रहण किया, वह पारंपरिक नीति–कथाओं या लोक–कथाओं वाले रूप से सर्वथा भिन्न दिखाई देता है। पारंपरिक कहानी 'किसी स्थान पर किसी समय–विशेष में अमुक व्यक्ति रहता था' वाली शैली में, अपने अनुभव को अतीत में अवस्थित करके देखती थी। इसके बरक्स आधुनिक गद्य में कहानी ने अपने अनुभव को स्वयं अपने समय में 'उपस्थित' रूप में देखने–दिखाने की तमीज अर्जित की। इसलिये, इस रूप में कहानी–कला के मूल्यांकन की कसौटी न तो यह हो सकती थी कि उसका नैतिक संदेश क्या है, न यह कि वह कितनी देर तक हमारे कौतूहल के साथ चल सकती है। एक साहित्यिक रचना के रूप में कहानी को, अपने समय–संदर्भ में नये उद्देश्यों से जुड़ना था। कहानी की अर्थवत्ता और प्राभाविकता की जाँच–परख के उपकरणों की आवश्यकता का आरंभिक अहसास संभवतः ऐसे ही किसी बिंदु पर हुआ होगा।

हिंदी में पहला उपन्यास किसे माना जाये या पहली कहानी होने का श्रेय किस रचना को दिया जाये, इस पर पर्याप्त चर्चा हुई है। लेकिन कथालोचन के क्षेत्र में प्रारंभिक प्रयासों के बारे में कुछ भी चर्चा कर पाना अभी भी मुश्किल है। एक लंबे समय तक हिंदी की रचनाशीलता के केंद्र में चूंकि कविता ही रही, इसलिये ज़्यादा सुसंगत विकास–क्रम काव्यालोचना का ही मिलता है।

भारतेंदु युग की पत्र–पत्रिकाओं ('कवि–वचन सुधा', 'हरीशचंद्र मैगजीन', 'हरीशचंद्र पत्रिका', 'ब्राह्मण', 'हिंदी प्रदीप', 'आनंद–कादंबिनी') में हिंदी आलोचना के अनेक नमूने, समय–समय पर छपे लेखों और पुस्तक समीक्षाओं में देखने को मिलने लगते हैं लेकिन इन नमूनों के अंतर्गत कहानी आलोचना का कोई रूप तलाश पाना संभव नहीं हो पाता। अलबत्ता उपन्यास आलोचना के क्षेत्र के कुछ प्रयास मिल जाते हैं– जैसे बालकृष्ण भट्ट ने लाला श्रीनिवास दास के उपन्यास 'परीक्षा–गुरू' की समीक्षा 'हिंदी प्रदीप' में की।

8.3.2 हिंदी समाज में स्वीकृति पाने का संघर्ष

असल में, हिंदी में उपन्यास और कहानी जैसी विधाओं को सबसे पहले तो, सारा संघर्ष इसी बात को लेकर करना पड़ा कि हिंदी समाज में उनको साहित्यिक स्वीकृति कैसे मिले। जो पीढ़ियां 'पंचतंत्र' वगैरह की कहानियों को पढ़कर या दादी–नानी के मुँह से सुनी राजा–रानी या देवताओं और परियों की कहानियों से संस्कारित हुई थीं, उन्हें नयी तरह की कहानियों पर शक था कि वे नयी पीढ़ियों को संस्कार–भ्रष्ट कर सकती हैं। कहानी लिखने वालों को भी लगता था कि उनकी रचना को प्रशंसा की नजर से कम शक की नजर से ज़्यादा देखा जा सकता है। संभवतः ऐसी ही आशंकाओं के चलते कुछ कहानीकारों ने अपनी कहानियों के साथ अपना असली नाम जोड़ने से भी परहेज किया। कविगण जहाँ अपने नाम के साथ 'उपनाम' जोड़ने में गौरव का अनुभव करते थे, वहीं उन दिनों के कहानीकारों में से कईयों को अपना वास्तविक नाम छिपाकर 'छद्म नाम' से लिखना ज्यादा उचित लगा। इसी प्रक्रिया में, गिरिजाकुमार घोष 'बिजली'(1904) के लेखक बने तो 'पार्वतीनंदन' हो गये। 'दुलाई वाली'(1907) की लेखिका राजेंद्र बाला घोष 'बंगमहिला' हो गयीं। 'वीरांगना' की लेखिका 'बावली बहू' हो गयी।

8.3.3 कहानी के साथ हिंदी आलोचना के सलूक का प्रश्न

महावीर प्रसाद द्विवेदी अपनी संपादकीय नीति में चाहे जितने भी मर्यादावादी या नैतिकतावादी रहे हों लेकिन हिंदी कहानी पर उनका बड़ा उपकार यह रहा कि 'सरस्वती' में हिंदी कहानीकारों को स्थान देने में उन्होंने कोई संकोच नहीं किया। हालाँकि, जैसा भवदेव पाण्डे ने लक्षित किया है, " तदयुगीन कविता–नाटक–निबंध तथा उपन्यास के साहित्य–भवन में कहानियों का जबरन प्रवेश पुराने खेमे के साहित्यकारों को बुरा लगा।'' पुराने खेमे के ऐसे ही एक साहित्यकार थे चौधरी बद्री नारायण 'प्रेमघन' जिनका दृष्टिकोण कहानी के प्रति कितना निषेधवादी था, यह उनके इस कथन से जाना जा सकता हैः "कुछ परिश्रम स्वीकार कर मस्तिष्क लड़ा विशुद्ध भाषा और भाव के संग विद्या और शिक्षा लाने से भाषा का उपकार संभव है, न कि केवल ऐसी कहानियों को लिख डालने से, जैसा कि लोग जबानी प्रायः कहा करते हैं और जिनके पढ़ डालने के पीछे के कुछ कष्ट या समय व्यर्थ जाने के अतिरिक्त पाठकों को और कुछ लाभ न हो"।('आनंदकादंबिनी'य1908)

जब आचार्य द्विवेदी को 'सरस्वती' से हटना पड़ा तो 'सरस्वती' के नये संपादक बने देवी प्रसाद मिश्र। उन्होंने 'सरस्वती' में आचार्य द्विवेदी द्वारा निर्धारित 'आख्यायिका–खण्ड' को जारी रखने की कोई जरूरत नहीं समझी। उन्होंने कोई कहानी छापी भी तो 'फुटकल' के अंतर्गत। जाहिर है, कहानी को वे साहित्य की 'फुटकल' विधा से ज़्यादा कोई अहमियत देने के पक्ष में नहीं थे। कुछ कहानियों को लेकर यह प्रश्न भी उठा कि उन्हें हिंदी की मौलिक रचना माना जाये या किसी विदेशी भाषा में लिखी गयी कहानी का हिंदी अनुवाद! उदाहरणार्थ, 1900 में 'सरस्वती' में प्रकाशित 'इंदुमति' (लेखक किशोरीलाल गोस्वामी)' की मौलिकता संदिग्ध हो उठी, जब उस पर किसी को बांग्ला की किसी कहानी की छाया दिखी तो किसी को शेक्सपीयर के नाटक 'टेंपेस्ट' की।

ये कुछ तथ्य हैं, जिनसे स्पष्ट होता है कि हिंदी में कहानी लिखने का समारंभ हो चुकने के काफी बाद तक भी यह तय नहीं हो पा रहा था कि 'कहानी' विधा के साथ हिंदी आलोचना का सलूक क्या हो! यह जरूर है कि कहानी के लिये विषय का चुनाव किन

आधारों पर किया जाये, इसका बेहतर विवेक उस दौर के कहानीकारों में जाग चुका था। कह सकते हैं कि इस विवेक को हिंदी कहानी के मूल्यांकन का एक आधार मानने की प्रवृत्ति उस दौर में विकसित हो रही थी। यही कारण है कि इंशाअल्ला खान की 'उदयभान चरित' या 'रानी केतकी की कहानी', जो 19वीं शताब्दी के आरंभिक दशकों में लिखी जा चुकी थी, 20वीं सदी के आते–आते, कहानी के रूप में स्वीकृति पाने के श्रेय से वंचित हो चुकती है और माधवराव सप्रे, गिरिजादत्त बाजपेयी, बंग महिला जैसे कहानीकारों में हिंदी कहानी अपने विधागत रूप में अधिक साफ पहचान में आने लगती है। ये कहानीकार जो विषय अपनी कहानियों के लिये चुनते हैं, इस विवेक के साथ चुनते हैं कि उनके अपने समय की कोई न कोई सामाजिक समस्या उनकी कहानियों के केंद्र में अवश्य रहे। उदाहरण के लिये सप्रे ने किसानों के संघर्ष और जमींदारों द्वारा उनके शोषण को विषय बनाते हुए 'एक टोकरी भर मिट्टी' जैसी कहानी लिखी। गिरिजादत्त बाजपेयी ने बेमेल विवाह की समस्या को अपनी कहानी 'पंडित और पंडितानी' का विषय बनाया। मास्टर भगवानदास की कहानी 'प्लेग की चुड़ैल' अंग्रेजी शासन की त्रासद विडंबना से जुड़ी है। इन उदाहरणों से स्पष्ट है कि हिंदी कहानी के प्रति यह भरोसा तेजी से जागने लगा था कि जीवन की यथार्थजन्य अनुभूतियों की अभिव्यक्ति के लिये चुने गये प्रसंग कहानी विधा में समर्थतम् रूप में ढाले जा सकते हैं।

उपर्युक्त कहानियों को अपना कोई बहुत समर्थ आलोचक तत्काल उस दौर में भले ही न मिला हो, लेकिन हम देख सकते हैं कि हिंदी कथालोचना में जब गम्भीरता से रूचि ली गयी तो, न केवल इन कहानियों का महत्व उजागर हुआ, बल्कि कहानी के आलोचनात्मक प्रतिमानों के कुछ बीज रूप भी उन्हीं में पाये गये। कुछ पर्यवेक्षण इस संदर्भ में यहाँ उल्लेख्य हैं। देवी प्रसाद वर्मा ने सप्रे की कहानी 'एक टोकरी भर मिट्टी' में लक्षित किया "सातवें दशक में कहानी का जो स्वरूप आज हमारे सम्मुख है, उसके सभी बीज इस कहानी में स्पष्ट हैं।.....नयी कहानी के प्रबल पक्षधर कमलेश्वर की वाणी किसी सीमा तक प्रस्तुत कहानी में मिलती है"। (दृष्टव्य्––'पहली कहानी', सं. कमलेश्वर,1985, पृ.14)। खगेंद्र ठाकुर यह कहने में कतई नहीं हिचकतेः " हिंदी कहानी का बीज तो भारतेंदु युग में ही बोया गया, कहानी का बिरवा मिट्टी फोड़ कर निकला उन्नीसवीं शताब्दी के खत्म होते–होते और बीसवीं सदी के आँख खोलते ही। 'एक टोकरी भर मिट्टी' हिंदी कहानी का पहला मजबूत कदम है"।(कथादेश, जून,1999)

संवेदना की प्रगाढ़ता और परिवेश–अंकन की दृष्टि से सर्वाधिक प्रभावपूर्ण कहानी का रूप क्या हो सकता है, यह जानने में जिस कहानी ने सर्वप्रथम योग दिया, वह है गुलेरी जी की 'उसने कहा था'(1915)। विजयमोहन सिंह ने उसे "हिंदी की प्रथम आधुनिक कहानी" होने का श्रेय देते हुए लिखा है कि इस कहानी में 'दशकों बाद आने वाली अनेक प्राविधिक प्रवृत्तियों के स्रोत ढूंढ़े जा सकते हैं।('आज की कहानी', 1983, पृ. 11–12)

8.3.4 कहानी आलोचना का पूर्व–परिदृश्य

हिंदी आलोचना के सर्वाधिक वैज्ञानिक रूप के प्रवर्तक आचार्य माने जाने वाले रामचंद्र शुक्ल मूलतः कविता प्रेमी ही थे। इसलिये वह उस दौर की कहानियों के बारे में इससे अधिक कुछ और नहीं लिख सके–" ऐसी कहानियों की ओर लोग बहुत आकर्षित हुए और वे इस काल के भीतर ही प्रायः सब मासिक पत्रिकाओं में बीच–बीच में निकलती रहीं"।('हिंदी साहित्य का इतिहास', पृ. 481)। आश्चर्य होता है इस अगंभीरतायुक्त वक्तव्य को पढ़कर, खासकर इसलिये भी कि यह एक ऐसे आचार्य का वक्तव्य है जिसकी खुद

की लिखी कहानी 'ग्यारह वर्ष का समय' को हिंदी की 'पहली कहानी' की खोज में निकले कुछ अध्येताओं ने महत्वपूर्ण स्थान दिया है। लेकिन फिर भी कहानी विधा को व्यापक पाठक वर्ग की ओर से जो व्यापक स्वीकृति मिल रही थी, उसका दबाव कविता–प्रेमी आलोचकों पर भी था। श्यामसुंदर दास हों या रामचंद्र शुक्ल, कहानी के अपने वैशिष्ट्रस को लक्षित करना दोनों के लिये एक हद तक जरूरी लगने लगा था। श्यामसुंदर दास ने कहानी के विकास को यों लक्ष्य किया था–" एक ओर कला की दृष्टि से उसका विकास होता गया और दूसरी ओर उसमे उन्नत विचारों की मात्रा भी बढ़ती गयी"। ('साहित्यालोचन, पृ. 185)।

द्विवेदी युग में 'सरस्वती' और 'इंदु' जैसी पत्रिकाओं के बीच कहानियों के चयन में नैतिकतावादी और भावुकतावादी आधारों में जो द्वंद्व था, उसके चलते जयशंकर प्रसाद के लिये 'सरस्वती' में कोई अवकाश नहीं था। प्रसाद को कहानीकार के रूप में 'इंदु' ने ही मंच दिया। प्रसाद की कहानी 'ग्राम' ('इंदु', 1911 में प्रकाशित) को आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने 'कल्पना और भावुकता' का कोश कहकर सराहा। 'सरस्वती' में प्रकाशित, गुलेरी जी की 'उसने कहा था' के बारे में लिखा–" इसमें पक्के यथार्थवाद के बीच सुरूचि की चरम मर्यादा के भीतर भावुकता का चरम उत्कर्ष अत्यंत निपुणता के साथ संपुटित है।'' शुक्ल जी के इन कथनों से स्पष्ट है कि शुक्ल जी कहानी में यथार्थ और कल्पनाशीलता या भावुकता के सहअस्तित्व के प्रति उतने शंकालु नहीं थे, जितने शंकालु श्यामसुंदर दास और हरिभाऊ उपाध्याय जैसे आलोचक थे। श्यामसुंदर दास का कलावादी दृष्टिकोण यथार्थ के बारे में सही समझ बनने देने में बाधक था। उन्हें शिकायत हुई कि यथार्थ के नाम पर 'कहानियों में अधिकतर किसान या मजदूर पर किये गये उच्च वर्ग वालों के अत्याचारों का वर्णन' ही मिलता है।('साहित्यालोचन, पृ, 191)। यह संकेत प्रेमचंद की कहानियों की ओर था। उधर प्रसाद की कहानियों का संग्रह 'छाया' आ चुका था, जिसका स्वागत कलावादियों ने किया लेकिन 'औदुम्बर" पत्रिका के संपादक हरिभाऊ उपाध्याय ने उसमें यथार्थ का अभाव देखा और शिकायत की कि " लेखक महाशय कल्पना–तरंग में इतने डूब जाते हैं कि उनको सत्य–सृष्टि का स्मरण भी नहीं रहता"। ('औदुंबर', 1913)। इन दो अतिवादी दृष्टियों के बीच आचार्य शुक्ल कहानी आलोचना के बीच कम से कम इसलिये तो याद किये ही जायेंगे कि यथार्थ और भावुकता के बीच वैसा आत्यंतिक विरोध नहीं देखते और अपेक्षाकृत अधिक संतुलित दृष्टि रखते हैं।

कहानी आलोचना की कोई बहुत व्यवस्थित और स्वतंत्र पुस्तक खोजने निकलिये तो लंबे समय तक निराशा ही हाथ लगेगी। सन 1956 में जगन्नाथ प्रसाद शर्मा की पुस्तक प्रकाशित हुई 'कहानी का रचना विधान'। कहानी आलोचना की दिशा में कोई मौलिक सूझ इस पुस्तक ने नहीं दी लेकिन इसका ऐतिहासिक महत्व यह है कि इसके परिशिष्ट 'बोध–विश्लेषण' के अंतर्गत तीन कहानियों (अज्ञेय की 'गैंग्रीन', प्रसाद की 'आकाशदीप' और प्रेमचंद की 'ईदगाह' का विश्लेषण अलग–अलग विस्तृत रूप में करके प्रेमचंद से अज्ञेय तक की कहानी–संवेदना के विकास–क्रम को रेखांकित करने का प्रयास किया गया है।

शुक्लोत्तर आलोचना में एक हस्तक्षेप कहानी के संदर्भ में आचार्य नंददुलारे बाजपेयी भी करते हैं। इस दृष्टि से उनकी पुस्तक 'आधुनिक साहित्य'(1956) का 'नई कहानी' शीर्षक अध्याय ध्यान आकृष्ट करता है। इसके अंतर्गत वे प्रेमचंद और उनके बाद की कहानीकार पीढ़ी पर विचार करते हैं लेकिन अपनी आलोचना के भाववादी रूझानों के कारण अपने पूर्वाग्रहों से मुक्त नहीं हो पाते।

8.3.5 हिंदी कहानी और कहानी आलोचना के विकास में सहवर्तिता का अभाव

हिंदी में इतिहास के स्रोत से लिये गये कथानकों को कहानी में ढालने का उपक्रम वृंदावनलाल वर्मा ने 20वीं सदी के पहले दशक में शुरू किया था। 'राखी बंद भाई' और 'तातार और वीर राजपूत' शीर्षक से उनकी दो कहानियाँ 'सरस्वती' में उसी दौर में छपीं। खुद प्रेमचंद की कितनी दिलचस्पी इतिहास में थी, इसका प्रमाण उनकी 'रानी सारंधा', 'राजा हरदौल', 'मर्यादा की वेदी', 'पाप का अग्निकुंड' तथा 'आल्हा' आदि कहानियों में मिलता है। प्रसाद का कहानी–संग्रह 'छाया'(1913) आया, तब तक प्रेमचंद का कोई संग्रह नहीं आया था, हालाँकि उर्दू में 'सोजे वतन' छप चुका था। 'छाया' की अनेक कहानियाँ ('तानसेन', 'अशोक', 'जहाँनआरा' आदि) ऐतिहासिक पृष्ठभूमि वाली हैं। आगे चलकर भगवतीचरण वर्मा, रांगेय राघव, राहुल सांकृत्यायन ने भी इतिहासाधारित कहानियाँ लिखीं। लेकिन ऐतिहासिक कहानियों में इतिहास के उपयोग को लेकर कहानी आलोचना की कोई सैद्धांतिकी निर्मित हो, ऐसा नहीं हो पाया। भगवतशरण उपाध्याय ने अवश्य इतिहास और कथा–सृष्टि के आपसी रिश्तों को लेकर खासी उधेड़बुन की लेकिन उनका दृष्टिकोण प्रायः संदेहवादी रहा।

प्रेमचंदोत्तर पीढ़ी के कथाकारों में दो समानांतर 'त्रयियाँ' बनीं। एक त्रयी में अज्ञेय, जैनेंद्र, इलाचंद्र जोशी, तो दूसरी त्रयी में भगवतीचरण वर्मा, अमृतलाल नागर और यशपाल। पहली त्रयी से आलोचना को कुछ मनोविश्लेषणात्मक प्रतिमान मिले। दूसरी त्रयी से 'किस्सागोई' या 'कहन' के तत्व के प्रति लोकाकर्षण के स्वरूप को समझने के सूत्र मिले। किसी भी सिद्धांत की यांत्रिक पटरी पर यदि रचनाशीलता चल पड़े तो इसकी सीमा क्या होती है, यह जानना हो तो पहली त्रयी के इलाचंद्र जोशी और दूसरी त्रयी के यशपाल पर क्रमशः प्रकाशचंद्र गुप्त और रामविलास शर्मा जैसे आलोचकों की टिप्पणियाँ मददगार हो सकती हैं। जोशी के यहाँ मनोविश्लेषण के रास्ते से कहानी अक्सर इस तरह गुजरती है कि कहानी 'कहानी' नहीं 'केस हिस्ट्री' बन जाती है। यशपाल के यहाँ मार्क्सवादी सूत्रों का अक्सर ऐसा पल्ला उनकी रचनाएँ थाम लेती हैं कि 'इति सिद्धम्' तक पहुँचने वाले 'प्रमेयों' (थ्योरम) का रूप ले लेती हैं।

मनोवैज्ञानिकता और सामाजिकता के द्वंद्व के बीच फंसे व्यक्ति–मन के चित्र उकेरने की कोशिश उपेंद्रनाथ अश्क ने भी की। इस कोशिश की सफलता और असफलता का अंदाज उनकी 'डाची', 'पलंग', 'ठहराव' या 'आग और मुस्कान' जैसी कहानियों को पढ़कर लगाया जा सकता है।

गांधीवादी मन का एक रूप जैनेंद्र में देखा गया तो एक और रूप विष्णु प्रभाकर में लेकिन फर्क यह है कि जैनेंद्र की कहानियाँ दार्शनिकता की ओर ज्यादा झुक जाती थीं तो विष्णु प्रभाकर की कहानियाँ एक तरह के आदर्शवाद की ओर।

इतिहास, विचारधारा, दर्शन वगैरह के तत्वों से निर्मित कथा–दृष्टियों का उपर्युक्त विवरण इस उद्देश्य से यहाँ प्रस्तुत किया गया कि कहानी की आलोचना में इनके हस्तक्षेप का जो किंचित अदृश्य रूप रहा होगा, उसका अनुमान किया जा सके।

यहाँ यह भी उल्लेख्य है कि प्रगतिवाद और प्रयोगवाद नाम से जो साहित्यांदोलन चले, उनमें कहानी की स्वतंत्र सत्ता को पहचानने का कोई उत्साह नहीं देखा गया। इन दोनों

आंदोलनों के अपने–अपने दायरों में जो भी प्रतिमान स्वीकार किये गये, वे सामान्यतया साहित्य की सभी विधाओं के लिये समान रूप से काम्य माने गये।

8.3.6 कहानी की आंदोलनात्मक दिशाएं

कहानी विधा की अपनी स्वतंत्र सत्ता की चिंता करने वाले आंदोलन हिंदी साहित्य में बीसवीं सदी के उत्तरार्ध में उभरे। सन 1947 में मिली आजादी भारतीय समाज का संदर्भ बनी तो उसने साहित्य का भी संदर्भ बनने की एक सहज चेष्टा की। कहानी की स्वतंत्रता जैसा कोई मुहावरा तो नहीं बना,('कविता की मुक्ति' का तो निराला के यहाँ छायावाद काल में ही बन चुका था) लेकिन कहानी को केंद्र में रखकर, जो पहला आंदोलन(1954–63) हिंदी में चला, वह था 'नई कहानी आंदोलन'। कहानी–आलोचना के कई महत्वपूर्ण हस्ताक्षर इसी आंदोलन के दौर में पहली बार सामने आये। देवीशंकर अवस्थी, सुरेंद्र चौधरी, धनंजय वर्मा आदि।

'नयी कहानी' नाम से लिखी जाने वाली रचनाओं में प्रायः मध्यवर्गीय शहरी जीवन की जटिलताओं में उलझे व्यक्ति–मन के द्वंद्वों का चित्रण मिलता था इसीलिये, इस दौरान 'शहर बनाम गाँव' की बहस भी छिड़ी। कमलेश्वर, राजेंद्र यादव, मोहन राकेश और निर्मल वर्मा के कथानुभव में प्रायः नगर ही बसता था गाँव नहीं। गाँव कहीं था भी, तो एक 'नॉस्टेलजिया' मात्र था। शिवप्रसाद सिंह ने इस प्रश्न को गंभीरता से उठाया।

मार्कण्डेय, शिवप्रसाद सिंह, नई कहानी वाले दौर में गाँव के अनुभवों पर कहानियाँ लिख रहे थे, रेणु, नागार्जुन भी। रेणु में तो अंचल अपनी पूरी जीवित सत्ता में उभरता था। इन्हें खासतौर से आलोचकों ने आँचलिक कथाकार की संज्ञा दी।

'अनुभूति की प्रामाणिकता', 'भोगा हुआ यथार्थ' जैसे कुछ प्रतिमानात्मक मुहावरे नई कहानी आंदोलन के अंतर्गत खूब उछले। इनसे अप्रभावित रहने वाले कहानीकारों में अमरकांत, शेखर जोशी, भीष्म साहनी ने नई कहानी की आत्मपरकता और व्यक्तिवादिता से अपने को बचाकर यथार्थ चित्रण की सहज राह पकड़ी। प्रेमचंद जैसी सादगी के साथ यथार्थ को व्यक्त करना इन्हें अभीष्ट रहा।

नयी कहानी के बाद कहानी केंद्रित अन्य आंदोलन भी चलाये गये। 'सचेतन कहानी', 'अ–कहानी', 'समांतर कहानी', 'जनवादी कहानी' आदि। इन आंदोलनो ने समय–समय पर अपने–अपने वैशिष्ट्यों को स्थापित करने की बहसें जरूर चलाईं, लेकिन वे अल्पजीवी ही रहीं। केवल 'जनवादी कहानी' को लेकर 'प्रतिबद्धता' और 'पक्षधरता' जैसे कुछ पद चलते रहे, लेकिन मूल रूप में ये प्रगतिवादी आलोचना की ही देन माने गये। अमृतराय ने 'सहज कहानी' नाम से एक आंदोलन चलाना चाहा। इन सब आंदोलनों से जुड़कर कुछ नये–नये नाम कहानीकारों के तो आते रहे लेकिन इन आंदोलनों में से कहानी आलोचना के कुछ समर्थ हस्ताक्षर भी उभरते, ऐसा लगभग नहीं हो सका। कहानी की समर्थ आलोचना का उत्साह ज़्यादतर उन्हीं आलोचकों में विकसित होते पाया जाता है, जो नयी कहानी आंदोलन के दौर की बहसों से आकृष्ट हुए।

8.3.7 कहानी की आलोचना में काव्यालोचना के उपनिवेश और कहानी की आलोचना की मुक्ति का प्रश्न

वस्तुतः कहानी आलोचना के साथ एक कठिनाई शुरू से ही यह रही कि वह काव्यालोचना में उपलब्ध किये गये प्रत्ययों का एक लंबे समय तक उपनिवेश बनी रही। आचार्य शुक्ल

हिंदी कहानी के विकास में हिंदी कवियों के योग की बात शुरू में ही कह चुके थे–" छोटी कहानियों का विकास तो हमारे यहाँ और भी विशद और विस्तृत रूप में हुआ और उसमें वर्तमान कवियों का पूरा योग रहा"।('हिंदी साहित्य का इतिहास', पृ. 519)। यह धारणा दूर तक किसी न किसी रूप में कहानी आलोचना का ऐसा पीछा करती रही कि प्रायः काव्यालोचना के उपकरणों का ही उपयोग कहानी आलोचना में भी होता रहा। रामचंद्र शुक्ल से लेकर नामवर सिंह तथा उनके बाद के आलोचकों तक। परमानंद श्रीवास्तव जैसे आलोचक तो इतने उत्साह में रहे कि कविता में छंद की तर्ज पर 'कहानी के छंद' की बात करते देखे गये। आखिर जब छंद का बहिष्कार कविता कर चुकी हो तो छंद बेचारा कहानी में अपना आश्रय ढूंढ़ता क्यों न दिखता?

काव्यशास्त्र की छाया से कथालोचना को मुक्ति दिलाने के संघर्ष का बीड़ा इसीलिये प्रायः स्वयं कहानीकारों को आगे बढ़कर उठाना पड़ा। खासतौर पर 'नयी कहानी' आंदोलन के दौर में। कमलेश्वर, राजेंद्र यादव, मोहन राकेश वगैरह ने तो मोर्चा संभाला ही, बाद में भैरव प्रसाद गुप्त और मार्कण्डेय तक इस मोर्चे पर डटे।

इधर अज्ञेय जैसे लेखक(जो कहानीकार के रूप में पर्याप्त प्रतिष्ठा अर्जित कर चुके थे) कविता के सामने कहानी विधा को साहित्य की गंभीर विधा मानने से ही इंकार करने लगे और रामस्वरूप चतुर्वेदी जैसे आलोचक कहानी पर अपना यह निर्णय थोपने लग गये कि 'कथा साहित्य असमय वृद्ध' हो चुका है। तब हिंदी के नये कहानीकारों के कान खड़े होना और भी स्वाभाविक था।

हिंदी में कहानी की स्वतंत्र पत्रिकाओं('माया', 'कहानी', 'नयी कहानियाँ', 'सारिका' इत्यादि) के प्रकाशन से कहानीकारों को मंच मिला, अपने पक्ष में अपनी लड़ाई खुद लड़ने का। कहानी लिखकर भी, और आलोचक की भूमिका में स्वयं उतरकर भी।

नामवर सिंह जैसे आलोचक, जो मूलतः कहानी के आलोचक नहीं थे, को भैरव प्रसाद गुप्त ने 'नई कहानियाँ' के संपादक के नाते, कहानी पर मूल्यांकनपरक लेख नियमित रूप से लिखने का आग्रह किया। यह यात्रा 'हाशिये पर' नामक स्तंभ से शुरू हुई और जनवरी 1960 से दिसंबर 1962, दो वर्षों तक जारी रही। इससे पहले भी नामवर सिंह 'सरस्वती प्रेस, इलाहाबाद' की पत्रिका 'कहानी' में लिखते रहे थे। इलाहाबाद में से ही प्रकाशित 'माया' में भी कहानी पर उनका लेख प्रकाशित हुआ। ये सारे लेख बाद में 'कहानीः नयी कहानी' पुस्तक में एक साथ प्रकाशित हुए।

कहानी–समीक्षा का ढाँचा तैयार कैसे होगा, यह प्रश्न नामवर जी की चिंता के केंद्र में जब आया तो उन्हें यह कहना उचित लगा कि 'जीवन के जिन मूल्यों की कसौटी पर हम कविता–उपन्यास आदि साहित्य रूपों की परीक्षा करते हैं, उन्हीं पर कहानी की भी परीक्षा होनी चाहिये। इससे कहानी समीक्षा का एक ढाँचा तो तैयार होगा ही, साथ–साथ मानवीय मूल्यों के संबंध में हमारा ज्ञान भी बढ़ेगा।'

नामवर जी नें लक्षित किया कि नये कहानीकार का ध्यान अब कहानी–शिल्प की ओर नहीं है। और यह कहानीकार की सीमा नहीं है, बल्कि यह जागरूक पाठक की अपेक्षा के अनुरूप है–" आज का जागरूक पाठक केवल कथानक की चरम सीमा से चौंक कर आल्हादित होने वाला मनुष्य नहीं रह गया है।'' कथानक में नाटकीयता लाये बिना अनुभव को सहजतयः कैसे उभरने देना चाहिये, इस कला के आदर्श रूप का उदाहरण नामवर जी ने चेखव की कहानियों को बताया। नाटकीयता का सहारा छोड़कर कहानी

में कथानक के होने को नामवर जी ने 'कहानी में यथार्थवाद की विजय के उद्घोष' के रूप में लिया।

कहानी की सार्थकता नामवर सिंह नें इस बात में मानी कि कहानी ' जीवन की छोटी से छोटी घटना में भी अर्थ खोज ले।' नामवर सिंह ने कहानी की पाठ–प्रक्रिया को महत्व दिया और अपनी समझ को उसी में से विकसित होने दिया।

8.3.8 कहानी आलोचना में कुछ प्रमुख हस्तक्षेप

आगे हिंदी कहानी की आलोचना के क्षेत्र में सुरेंद्र चौधरी, देवीशंकर अवस्थी, ह्रषिकेश, धनंजय वर्मा और मधुरेश की सक्रियता विशेष ध्यान आकृष्ट करती है।

सुरेंद्र चौधरी ने भी नामवर सिंह की तरह कहानी की पाठ–प्रक्रिया से आलोचना–दृष्टि को विकसित होना अभीष्ट माना। सुरेंद्र चौधरी की पुस्तक का नाम ही है–'कहानीः पाठ और प्रक्रिया'। सुरेंद्र चौधरी की अपनी आलोचना दृष्टि का एक वैशिष्ट्य यह भी है कि जो अमरकांत कहानीकार के रूप में नामवर के यहाँ 'हाशिये पर' भी नहीं थे, वे सुरेंद्र चौधरी की पाठ–प्रक्रिया के केंद्र में आ गये। ज़ाहिर है, सुरेंद्र चौधरी कहानी में भावगत् अमूर्तता की सीमा को नामवर से ज़्यादा समझ सके थे और अमरकांत तथा रेणु जैसे कहानीकारों में जीवन की स्थितियों को मूर्त रूप में देखने की शक्ति को अधिक सार्थक मानते थे। ह्रषिकेश कहानी में परिवेश और वैचारिक पक्षधरता के प्रश्न उठाते हुए देखे जाते हैं। देवीशंकर अवस्थी कहानी आलोचना में सिद्धांत चर्चा को बहुत महत्व नहीं देते। 'नयी कहानीः संदर्भ और प्रकृति' शीर्षक अपनी पुस्तक में वे प्रारंभ में ही आगाह कर देते हैं कि 'सिद्धांत चर्चा आलोचना नहीं होती।' उनकी दृष्टि 'रचना में रूप–बंध की मीमांसा' पर रहती है। वे कहानी के आलोचक के रूप में अपना दायित्व मानते हैं कि "जीवन की उस गहराई की थाह ली जाये, जहाँ से लेखक अपनी संवेदना की डोर के सहारे अनुभव को खींच कर कहानी में लाता है।''

धनंजय वर्मा ने भी नयी कहानी आंदोलन के प्रवक्ताओं की सी भूमिका अदा करते हुए कहानी आलोचना में अपनी उपस्थिति दर्ज कराई। उस दौरान लिखे गये उनके लेखों का संकलन 'हिंदी कहानी का रचनाशास्त्र' नाम से प्रकाशित हुआ।

मधुरेश के यहाँ कहानी आलोचना के अधिकांश प्रयास पुस्तक समीक्षा के रूप में मिलते हैं। लेकिन फिर भी जिस निष्ठा के साथ उन्होंने अपने लेखन में निरंतरता बनाये रखी, वह कहानी आलोचना की दृष्टि से मूल्यवान है। यह निरंतरतापूर्ण निष्ठा भले ही किसी सैद्धांतिकी में निष्पन्न न हो सकी हो, पर उनकी अध्ययनशीलता और व्यावहारिक समीक्षा में उनकी रूचि को दर्शाती है।

कहानी की आलोचना को गति देने वालों में कुछ ऐसे आलोचकों के नाम लिये जा सकते हैं, जिन्होंने कहानी पर ज़्यादा भले ही न लिखा हो लेकिन जो भी लिखा, वह विचारोत्तेजक साबित हुआ। इंद्रनाथ मदान, नेमिचंद जैन, विश्वनाथ त्रिपाठी, नित्यानंद तिवारी और विजयमोहन सिंह ने समय–समय पर कहानी के मूल्यांकन के लिये कुछ बहुत ही सार्थक संकेत किये। विश्वनाथ त्रिपाठी ने अमरकांत, शेखर जोशी, शानी, ज्ञानरंजन में आत्मपरकता से उबरकर निखरने वाली कहानी के तेज का महत्व दिखाया। उनकी किताब 'कुछ कहानियांः कुछ विचार' इस दृष्टि से महत्वपूर्ण है। नेमिचंद जैन ने कहानी पर कोई स्वतंत्र पुस्तक नहीं लिखी, 'जनांतिक' में उनके लिखे कुछ आलेख

संकलित हैं जिनसे पता चलता है कि ज्ञानरंजन, मुद्राराक्षस जैसे कहानीकारों पर उनके क्या विचार रहे। नित्यानंद तिवारी ने 'कथानक का आग्रह' शीर्षक से एक लंबा लेख लिखा, जो सीधे 'कहानी' की विधा से संबंधित नहीं है लेकिन नयी कहानी और प्रयोगवादी दौर की कहानियों में, कथानक को कहानी में निरा स्थूल तत्व मानकर जिस रूप में खारिज किया जा रहा था, उसके खतरे समझने की एक दृष्टि से वह लेख उपयोगी है।

विजयमोहन सिंह की पुस्तकों 'आज की कहानी'(1983) और 'कथा समय'(1993) में संकलित लेखों में कुछ कहानीकारों पर पुनर्विचार किया गया है तो कुछ पर पहली बार विचार किया गया है। पुनर्विचार के केंद्र में गुलेरी, प्रेमचंद, प्रसाद हैं तो पहली बार विचार के केंद्र में मुक्तिबोध, मनोहरश्याम जोशी हैं जिन पर अन्यत्र व्यवस्थित रूप से शायद ही कुछ लिखा मिले। रविभूषण, राजेंद्र कुमार, अजय तिवारी जैसे कुछ गंभीर अध्येताओं ने भी कहानी विधा पर जो टिप्पणियाँ की हैं, उनसे भी कहानी को परखने की दृष्टि मिलती है।

इधर कुछ विमर्शों ने हिंदी की कहानी आलोचना को गहराई से प्रभावित किया है। इनमें दलित विमर्श और स्त्री विमर्श प्रमुख हैं। इन विमर्शों ने कहानी और कहानी आलोचना के परिदृश्य में आमूलचूल बदलाव लाया है। कहानी लेखन और आलोचना के क्षेत्र में दलितों और महिलाओं की बढ़ती भागीदारी इसका प्रमाण है। अब कहानी आलोचना पारंपरिक मानदंडों और पूर्वाग्रहों को चुनौती देते हुए कहानी विधा के अब तक अनछुए पहलुओं की बेबाकी से पड़ताल करती दिख रही है। निःसंदेह कहानी की आलोचना का यह साहस बहुत सी उम्मीदें जगा रहा है।

8.4 सारांश

एम. ए.(हिंदी) के द्वितीय वर्ष के कहानी से संबंधित मॉड्यूल के पाठ्यक्रम 'कहानीः स्वरूप और विकास' के दूसरे खण्ड की आठवीं इकाई का अध्ययन आपने किया है। यह कहानी की आलोचना की परंपरा के विकास को दर्शाने वाली इकाई है।

इकाई–8 के पाठ में आपने देखा कि वैश्विक परिदृश्य में कहानी की आलोचना को आरंभ में वैसा प्रोत्साहन नहीं मिला जैसा कि कविता और उपन्यास की आलोचना को मिला था। आरंभ में कहानी आलोचना ने जो आकार लिया उसमें स्वयं कहानी लेखकों द्वारा लिखे गये लेखों की महत्वपूर्ण भूमिका रही। बाद में कहानी आलोचना ने तमाम भ्रांतियों का निराकरण करते हुए विश्व स्तर पर अपनी एक अलग पहचान बनाई।

हिंदी में कहानी आलोचना की शुरूआत काफी संघर्षपूर्ण रही। उसको स्वीकृति पाने के लिये लंबा संघर्ष करना पड़ा। हिंदी में कई आलोचकों नें कहानी पर काम किया लेकिन कहानी की आलोचना को एक संगठित और उन्नत स्वरूप प्राप्त करने में काफी दिक्कतें आयीं। ज़्यादातर जो भी उत्कृष्ट काम कहानी की आलोचना के क्षेत्र में हुआ है, वह यत्र–तत्र बिखरा हुआ है, और जो उत्कृष्ट पुस्तके उपलब्ध हैं वह लेखों का असंगठित संग्रह हैं। बेशक कुछ अपवाद भी हैं। लेकिन इन सब के बावजूद कहानी में आलोचकों की दिलचस्पी लगातार बढ़ी है और कहानी की आलोचना को एक संगठित आधार देने का काम हिंदी में लगातार जारी है। इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आप कहानी आलोचना के वैश्विक परिदृश्य और हिंदी में कहानी आलोचना की परंपरा को समझ सकेंगे/सकेंगी।

अभ्यास

1. कहानी आलोचना की वैश्विक परंपरा की उपलब्धियों पर प्रकाश डालिये।
2. हिंदी कहानी की आरंभिक आलोचना की विशेषताओं का वर्णन कीजिये।
3. नयी कहानी के दौर की आलोचनात्मक बहसों पर संक्षिप्त टिप्पणी कीजिये।
4. आज की कहानी आलोचना को प्रभावित करने वाले विमर्शों का संक्षिप्त परिचय दीजिये।

संदर्भ ग्रंथ :

1. जैनेंद्र कुमार, सं., 23 हिन्दी कहानियाँ, इलाहाबादः लोकभारती, 1998।
2. सतीश जमाली, भूमिका, जंगजारी- (कहानी-संग्रह), नई दिल्लीः प्रकाशन संस्थान, 2001 ।
3. यशपाल, यशपाल की संपूर्ण कहानियाँ, इलाहाबादः लोकभारती, 2000।
4. मार्कंडेय, कहानी की बात, इलाहाबाद : लोकभारती, 1984 ।

कुछ उपयोगी पुस्तकें

1. हिन्दी कहानी का विकास, मधुरेश, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, उ.प्र.।
2. कहानीः नयी कहानी, नामवर सिंह, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।
3. कहानीः स्वरूप और संवेदना, राजेन्द्र यादव, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली।
4. समकालीन कहानीः रचनामुद्रा, पुष्पपाल सिंह, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली।